Master of Arts (Hindi)

Semester – I

Paper Code –

VISHES RACHNAKAR KABIRDAS-I

विशेष रचनाकार कबीरदास–I

विषयसूची

क्रमांक	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
1.	व्याख्या खण्ड (खंड–क)	
	कबीर ग्रंथावली : पद	4
2.	आलोचना खंड –(ख)	
	1. कबीर का स्त्री विषयक चिन्तन	79
	2. कबीर की मानवतावादी दृष्टि	82
	3. कबीर का रहस्यवाद	87
	4. कबीर के राम	93
	5. कबीर की प्रासंगिकता	98
	6. कबीर का काव्य रूप	104
	7. कबीर की उलटबांसियां	111
	8. कबीर का प्रतीक योजना	116
	9. कबीर की भाषा	122
	10. कबीर के साहित्य में पारिभाषिक शब्द	128

खंड –(क)

व्याख्या खण्ड

कबीर ग्रंथावली : पद

राग गौड़ी

1. दुलहनी गाबहु मंगलचार,
हम घरि आए हो राजा राम भरतार ।। टेक।।
तन रत करि मैं मन रत करिहूँ, पंचतत्त बराती।
रामदेव मोरे पाँहुनै आये मैं जोबन में माती।।
सरीर सरोवर बेदी करिहूँ, ब्रह्मा वेद उचार।
रामदेव संगि भाँवरी लैहूँ, धनि धनि भाग हमार।।
सुर तेतीसू कौतिग आये, मुनिवर सहस अठयासी।
कहै कबीर हँम व्याहि चले हैं, पुरिष एक अविनासी।। (1)

व्याख्या

हे सहागिनि वधुओ। तुम विवाहोचित मंगल गीत गाओ, क्योंकि आज मेरे घर में राजा राम पति के रूप में आये हैं। मेरा तन और मेरा मन दोनों ही उनमें आसक्त हैं, समर्पित हैं। पंचतत्व (पृथ्वी, आकाश, पानी, पवन, आग) बराती के रूप आए हुए हैं। राम देव मेरे अतिथि हैं और में पोवन में मदमस्त हूँ। अर्थात उनका स्वागत करने के लिए उद्यत तथा तत्पर हूँ। उस स्वागत के लिए में अपने शरीर रूपी सरोवर की वेदी बनाऊँगी और ब्रह्मा वेद मन्त्रों का पाठ करेंगे। यह हमारा सौभाग्य है। मैं राजा राम के साथ भाँवर लूँगी। तैंतीस करोड़ देवता और अट्ठासी हजार मुनि इस विवाह समारोह के साक्षी हैं कि एक अविनाशी पुरुष हमें ब्याह करके लिए जा रहा है।

विशेष

1. विवाह और विवाह के समय नवोढ़ा (जीवात्मा) का उत्साह और उल्लास द्रष्टव्य है। रहस्यवाद की दशा का चित्रण है।
2. सीधी सरल मकड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।
3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास, रूपक व पुनरुक्तिप्रकाश अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।

7. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग है।

2. बहुत दिनन थै मैं प्रीतम पाये, भाग बड़े घरि बैठे आये।। टेक ।।
मंगलचार माँहि मन राखौं, राम रसाँइन रसना चाषौं।
मंदिर माँहि भयो उजियारा, ले सुतो अपना पीव पियारा।।
मैं रनि राती जे निधि पाई, हमहिं कहाँ यह तुमहि बड़ाई।
कहै कबीर मैं कछु न कीन्हा सखी सुहाग मोहि दीन्हा।।(2)

व्याख्या

कबीरदास जी कहते हैं कि जीवात्मा रूपी सुन्दरी कह रही है कि बहुत दिनों की प्रतीक्षा के पश्चात् मेरा प्रियतम आया है। यह मेरा सौभाग्य है कि वह मुझे बिना किसी प्रयास के घर बैठे–बिठाए ही प्रियतम मिल गए है मेरे मन में मंगलचार हो रहा है और मैं अपनी जिह्वा से राम–रसायन अर्थात् प्रेम–रस का स्वाद ले रही है मेरे मन–मंदिर में प्रकाश हो गया है और मैं अपने प्रियतम के साथ सो गयी हूँ अर्थात् प्रिय–मिलन प्राप्त सुख से का आनन्द ले रही हूँ। प्रिय के प्रेम में अनुरक्त होने के कारण मैंने यह निधि प्राप्त की है। इस प्राप्ति कोई योग नहीं है। यह तो प्रिय का ही बड़प्पन है, जिसने ऐसा अद्भुत योग प्रदान किया।

कबीरदास कहते हैं कि मैंने इस आनन्द–प्राप्ति के लिए कुछ नहीं किया। राम ने यह सौभाग्य –यह अक्सर मुझे सहज में ही प्रदान कर दिया है।

विशेष

1. इस पद पर प्रो० युगेश्वर की यह टिप्पणी द्रष्टव्य है– इस कविता की प्रथम पंक्ति में प्रतीक्षा है। प्रभु की कृ पा है। दूसरी में 'राम रसायन' शृंगार भाव के विरुद्ध भक्ति रस है। इसमें तीर्थ, यज्ञ, दान, वेदाध्ययन आदि का विरोध है। समर्पण मुख्य भाव है।

2. सीधी सरल सधुक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।

3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।

4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।

5. अनुप्रास व रूपक अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।

7. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग है।

3. अब तोहि जान न देहुँ राम पियारे, ज्यूँ भाव त्यूँ होहु हमारे।। टेक।।
बहुत दिनन के बिछुरे हरि पाये, भाग बड़े घरि बैठे आये।।
चरननि लानि करौं बरियायी, प्रेम प्रीति राखौं उरझाई।
इत मन मंदिर रहौ नित चौषे, कहै कबीर करहु मतिघोषैं।।

व्याख्या

आत्मा रूपी पत्नी परमात्मा रूपी पति को सम्बोधित करते हुए कहती है कि हे प्रियतम परमात्मा! अब मैं तुम्हें जाने नहीं दूंगी। जैसे भी हो तुम मेरे बनकर रहो। बहुत दिनों से बिछुड़ने के बाद मैंने तुम्हें प्राप्त किया है। यह मेरा सौभाग्य है कि आप घर बैठे ही मेरे पास आ गये। मैं तुम्हारे चरणों में बलपूर्वक लगकर सेवा करूँगी और तुम्हें प्रेम–सूत्र में उलझा करके रखूँगी। कबीरदास कहते हैं कि इस सुन्दर मन–मन्दिर में निवास कीजिए। किसी धोखे में मत पड़िए।

विशेष

1. परमात्मा के प्रति जीवात्मा के अतिशय प्रेम और अधिकार भाव की व्यंजना हुई है।
2. सीधी सरल सधुक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।
3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास व रूपक अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग है।

4\. मन के मोहन बीठुल, यह मन लागौ तोहि रे।
चरन कँवल मन मानियाँ, और न भावै मोहि रे।। टेक।।
षट दल कँवल निवासिया, चहु कौं फेरि मिलाइ रे।
दहुँ के वीचि समाधियाँ, तहाँ काल न पासैं आइ रे।।।
अष्ट कँवल दल भीतरा, तहाँ श्रीरंग केलि कराइ रे।
सतगुर मिलै तौ पाइए, नहिं तौ जन्म अक्यारथ जाइ रे।।
कदली कुसुम दल भीतराँ, तहाँ दस आँगुल का वीच रे।
तहाँ दुवादस खोजि ले जनम होत नहीं मीच रे।।
बंक नालि के अंतरै, पछिम दिसाँ की बाट रे।
नीझर झरै रस पीजिये, तहाँ भँवर गुफा के घाट रे।।
त्रिवेणी मनाइ न्हवाइए सुरति मिलै जो हाथि रे।
तहाँ न फिरि मघ जोइए सनकादिक मिलिहै साथि रे।।
गगन गरिज मघ जोइये, तहाँ दीसै तार अनंत रे।
बिजुरी चमकि घन वरषिहै, तहाँ भीजत हैं सब संत रे।।
षोडस कँवल जब चेतिया, तब मिलि गये श्री बनवारि रे।
जरामरण भ्रम भाजिया, पुनरपि जनम निवारि रे।।

गुर. गमि तैं पाइए झषि सरे जिनि कोइ रे।

तहीं कबीरा रमि रह्या सहज समाधी सोइ रे ।।

व्याख्या

कबीरदास कहते हैं हे मनमोहन विष्णु (विट्ठल), यह मन तुमसे लगा हुआ है। यह मन तुम्हारे चरण–कमल में आसक्त हो गया है और मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता है। आप षट्दल कमल में अधिवास करते हैं। चारों तरफ भ्रमित इस मन को वहाँ से लौटाकर आप अपने में लगाये रखें जिससे यह मन द्विदल चक्र के बीच स्थिर हो जाए। इस चक्र के पास काल (यमराज) नहीं जा सकता है। भगवान आठ कमलों (मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा, सहस्रदल, सुरति आदि) के भीतर केलि (क्रीड़ा) करते हैं। सद्गुरु की प्राप्ति से ही परमात्मा की प्राप्ति होती है, अन्यथा जन्म और जीवन निरर्थक हो जाता है।

कदली कुसुम के समान हृदय–कमल में दश अंगुल की जगह है। वही द्वादश कमल (अनाहत चक्र) की खोज कर ले जहां जन्म और मृत्यु नहीं होता है। मेरुदण्ड (बंकनाल) के अन्दर सुषुम्ना नाड़ी (पश्चिम दिशा) का रास्ता है। वहां ब्रह्मरंध्र (भंवर गुफा) से अमृत रस झरता रहता है उस रस को पीना चाहिए।

त्रिवेणी (त्रिकुटी) के घाट पर मन को सुरति (स्मरण) में स्नान कराना चाहिए। यहां किसी माग्र की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती है तथा सनकादि अर्थात् सनक, सनत्कुमार, सनंदन आदि श्रेष्ठ ऋषियों–मुनियों का समागम भी प्राप्त हो जाता है।

गगन गर्जना (अनाहत नाद) को सुनकर ऊपर देखना चाहिए। यहाँ अनंत तारे दिखाई पडेंगे। जब सोलह दल वाले कमल (विशुद्ध चक्र) पर ध्यान केन्द्रित होगा तब परमात्मा का साक्षात्कार होगा। साक्षात्कार होते ही जन्म और मृत्यु का भ्रम भाग जायेगा तथा अजर अमरता से पूर्ण मुक्ति मिल जाएगी। इस दशा को केवल गुरु–कृपा से प्राप्त किया जा सकता है और किसी प्रयास से नहीं।

कबीर कहते हैं कि मैं वहां सहज समाधि लगाकर रमण कर रहा हूँ।

विशेष

1. कवि ने ईश्वर के प्रति अपनी आसक्ति का चित्रण किया है।
2. सीधी सरल सधुक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।
3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास व रूपक अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग है।

5. मन रे मन ही उलटि समौंना।

गुर प्रसादि अकलि भई तोकौं नहीं तर था बेगाँना।। टेक।।

नेड़े थे दूरि दूर थें नियरा, जिनि जैसा करि जाना।

औ लौ ठीका चढ़या बलीडै, जिनि पीया तिनि माना।।

उलटे पवन चक्र षट बेधा, सुन सुरति लै लागि।
अमर न मरै मरै नहीं जावै, ताहि खोजि वैरागी।।
अनभै कथा कवन सी कहिये, है कोई चतुर बिबेकी।
कहै कवीर गुर दिया पलीता, सौ झल बिरलै देखी।।(8)

व्याख्या

मन उलटकर मन में ही लीन हो गया है अर्थात् मन अन्तर्मुखी हो गया है। गुरु की कृपा से बुद्धि निर्मल हो गयी, नहीं तो मैं पराया था। जो वस्तु नजदीक थी, वह दूर लगती थी और दूर वाली पास। यह तो प्रभु को जानने और समझने वाले पर निर्भर था। ओलौती (ओरौनी) का पानी मुंडेर की तरफ चढ़ गया है, जिसने उस जल को पिया है, वही उसके बारे में जान सकता है। उदात्त से प्रेरित कुण्डिलिनी छः चक्रों का भेधन करती हुई शून्य में मिल गयी है।

हे बैरागी मन! उस तत्त्व की खोज करो जो अमर है तथा जन्म–मरण से परे है। इस अनुभव की कथा को किससे कहा जाये? कोई चतुर और विवेकी व्यक्ति ही इसे समझ सकता है। कबीरदास कहते हैं कि गुरु ने ज्ञान का पलीता लगाया और पलीता से जो ज्वाला उठी, उसे कोई विरला ही देख सकता है।

विशेष

1. श्रीमद्भगवत्गीता में भी कहा गया है कि हजारों मनुष्यों में कोई एक मेरी प्राप्ति के लिए प्रयत्न करता है और उस प्रयत्न करने वाले योगियों में भी कोई एक मेरे मुझको तत्त्व से अर्थात् में जानता है

    मनुष्याजणां सहस्त्रेषु काश्चिद्यतति सिद्धये।
    यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्वतः।।

2. सीधी सरल सधुक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।
3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. दृष्टांत, वक्रोक्ति तथा विशेषोक्ति अलंकारों का प्रयोग है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग है।

6. अवधू ग्यान लहरि धुनि मीडि रे।
सबद अतीत अनाहद राता, इहि विधि त्रिष्णा षाँडी।। टेक।।
बन के संसै समंद पर कीया मंछा बसै पहाड़ी।
सुई पीवै ब्राह्मण मतवाला, फल लागा बिन बाड़ी।।
षाड़ बुणे कोली मैं बैठी, मैं खूँटा मैं गाढ़ी।
ताँणे वाणे पड़ी अनँवासी, सूत कहै बुणि गाढ़।।

कहै कबीर सुनहु रे संतो, अगम ग्यान पद माँही।

गुरु प्रसाद सुई कै नांकै, हस्ती आवै जाँही।। (10)

व्याख्या

कबीरदास जी कहते हैं कि है योगी! ज्ञान के लहर की ध्वनि चारों ओर फैली है। अहनद नाद में मन अनुरक्त है, इस प्रकार तृष्णाएँ खण्डित हो रही हैं। शरीर रूपी वन के खरगोश रूपी मन ब्रह्म नाड़ी रूपी समुद्र में लीन हो गया है और मन रूपी मत्स्य ने शून्य शिखर रूपी पहाड़ी पर वास कर लिया है। ब्रह्म साधना में लीन ब्राह्मण रूपी साधक सहस्रार से झरने वाले अमृत का पान कर रहा है। बिना बगीचे के फल (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) लगे हुए हैं। जीव रूपी जुलाहा (बुनकर) ही अहं है, वही खूटी है और वही गड्ढा है जो ध्यान का कपड़ा बुन रहा है।

कबीरदास कहते है कि हे संतो! सुनो! हमारा ध्यान (मन) अगम्यज्ञान वाले प्रभु के चरणों में लगा हुआ है। गुरु की कृपा से साधना के सूक्ष्म मार्ग रूपी सुई में जीव रूपी हाथी आता जाता रहता है।

विशेष

1. अनेक पुरातन प्रतीकों के माध्यम से अपनी बात को स्पष्ट करने का प्रयास कबीर ने किया है।
2. सीधी सरल सधुक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।
3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास, रूपक, विभावना व विरोधाभास अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग है।

7. एक अचंभा देखा रे भाई, ठाढ़ा सिंघ चरावै गाई।। टेक।।

पहले पूत पीछे भइ माँई, चेला के गुरु लागै पाई।

जल की मछली तरवर ब्याई, पकरि बिलाई मुरगै खाई।।

बैलहि डारि गूंनि घरि आई, कुत्ता कूँ लै गई बिलाई।।

तलिकर साषा ऊपरि करि मूल बहुत भाँति जड़ लागे फूल।

कहै कबीर या पद को बूझे, ताँकूँ तीन्यू त्रिभुवन सूझे।। (11)

सामान्य अर्थ

हे भाई! मैंने एक आश्चर्य देखा। सिंह खड़ा होकर गाय को चरा रहा है पहले पुत्र पैदा हुआ फिर माता का जन्म हुआ। गुरु चेला के चरणों में प्रणाम कर रहा है। जल में निवास करने वाली मछली ने वृक्ष पर बच्चे को जन्म दिया है, मुर्गे ने बिल्ली को पकड़कर खा लिया है। अनाज की गठरी बैल को घर छोड़कर आ गयी है और बिल्ली कुत्ते को उठाकर ले गयी। नीचे की ओर शाखाएँ हैं और ऊपर और जड़ में की भाँति–भाँति के फूल लगे हुए हैं।

कबीरदास कहते हैं कि जो इस पद के मर्म को समझता है, वह तीनों लोकों के बारे में जानता है।

आध्यात्मिक अर्थ–हे भाई! मैने एक अचंभा देखा कि जीव इन्द्रियों के अधीन है। पहले साधक का जन्म होता है, फिर साधना होती है। साधना की सिद्धि पर अन्तरात्मा प्रणत (गुरु) साधक (शिष्य) के प्रति हो जाती है। मूलाधार में विद्यमान कुण्डलिनी जागकर सुषम्ना के रास्ते से ब्रह्मरन्ध में पहुंचकर ज्ञान को पैदा करती है अज्ञानी मन यानि बहिर्मुखी प्रवृत्ति (कुत्ता) को अन्तर्मुखी प्रवृत्ति (बिलाई) हरण कर लेती है। अविवेक (बैल) को मन चैतन्य की ओर ले जाता है। ऊपर की ओर मूल (ब्रह्मान्ध, चेतना) है। नीचे की ओर शाखाएँ नाडी मंडल हैं। साधना की सिद्धि पर इसमें ज्ञान और आनन्द के फूल खिलते हैं।

कबीरदास कहते हैं कि साधना की सफलता के इस रहस्य को जो समझ लेता है, उसे तीनों लोकों का रहस्य ज्ञात हो जाता है।

विशेष

1. ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् साधक सहजावस्था में पहुँच जाता है।
2. सीधी सरल सधुक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।
3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास व रूपकातिशयोक्ति अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग है।

8. हरि के षारे बड़े पकाये, जिनि जारे तिनि पाये।
ग्यान अचेत फिरै नर लोई, ता जनमि डहकाए।। टेक।।
धौल मैंदलिया बैल रबाबी, बऊवा ताल बजावै।
पहरि चोलन आदम नाचे, भैसा निरति कहावै।।
स्यंघ बेटा पान कतरै, घूंस गिलौरा लावै।
उँदरी बपुरी मंगल गावै, कछु एक आनंद सुनावै।।
कहै कबीर सुनहु रे संतो, गडरी परबत खावा।
चकवा बैसि अँगारे निगले, समंद अकासा धावा।। (12)

व्याख्या

कबीरदास जी कहते हैं कि परमात्मा के खारे बड़े पकाये हैं। जिन व्यक्तियों ने अपनी साधना की आग में इनको जला दिया वे ही उनके सच्चे आनन्द को प्राप्त कर सकते हैं। जो लोग अज्ञानी हैं वे जन्म–जन्म तक धोखा खाते रहते हैं।

धवल बैल (मोह) मर्दल और सामान्य बैल (लोभ) रवाब बजा रहा है। कौआ ताल बजा रहा है। ग्रस्त जीव रूपी गदहा काम–क्रोध का वस्त्र पहनकर नृत्य कर रहा है। विषय–वासनाओं का भैंसा नृत्य कर रहा है। जीव रूपी सिंह बैठा हुआ पान कतर रहा है और बड़ा चूहा पान का बीड़ा बना रहा है। रागवृत्ति रूपी बेचारी चुहिया मंगल गान कर रही है और कछुआ आनन्द मग्न हो रहा है।

कबीरदास कहते हैं कि हे सन्तो! सुनो। भेड़ ने पर्वत को खा लिया है। चकवा बैठकर अंगार निगल रहा है, समुद्र आकाश की और दौड़ रहा है।

विशेष

1. ईश्वर प्राप्ति के लिए साधक का साधना की आग में तपना अनिवार्य है।
2. सीधी सरल सधुक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।
3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास व रूपक अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग है।

9. चरखा जिनि जरे। कतौंगी हजरी का सूत नणद के भइया की सौं
जलि जाई थलि ऊपजी, आई नगर मैं आप।
एक अचंभा देखिया, बिटिया जायौ बाप।।
बाबल मेरा ब्याह करि, बर उत्तम ले चाहि।
जब लाग बर पावै नहीं, तब लग तूं ही ब्याहि।।
सुवधी के घरि लुबधी आयो, आन बहू के भाइ।
चूल्हे अगनि बताइ करि, फल सौ दीयो ठठाइ।।
सब जगही मर जाइयौ, एक बड़इया जिनि मारै।।
सब राँडनि को साथ चरषा को धारै।।
कहै कबीर सो पंडित ज्ञाता जो या पदही बिचारै।
पहलै परच गुर मिले तो पीछैं सतगुर तारे ।। (13)

व्याख्या

कबीरदास जी कहते हैं कि जीवन चक्र रूपी चरखा मत जले अर्थात् जीवन चक्र निरन्तर चलता रहे। परमात्मा की शपथ है कि मैं साधना का महीन सूत कातूंगी। तात्पर्य यह कि साधना की सूक्ष्म वृत्तियों पर ध्यान केन्द्रित करूँगा। जल में जन्म होकर और थल में उत्पन्न होकर स्वयं नगर में आये हैं। एक अचंभा दिखायी पड़ा कि भगवान रूपी पुत्री ने जीवात्मा रूपी पिता को जन्म दिया है। मेरा बाबुल (पिता–गुरु) मेरा उत्तम से ब्याह करना चाहता है, लेकिन इस पर जीवात्मा कहती है कि जब तक वह वर नहीं प्राप्त हो पाता है तक तू ही मेरे साथ विवाह कर ले।

सुबुद्धि के घर लोभी आ गया है। उसके मन में दूसरे के बहू के प्रति कुविचार हैं। हृदय रूपी चूल्हे में सारी वासनाएँ जल गयी हैं। चतुर्वर्ग के फलों को देखकर हँसी आ रही है।

यह पूरा संसार भले ही मर जाये लेकिन चरखा को बनाने वाला परमात्मा रूपी बढ़ई न मरे। सारी

कुप्रवृत्तियों रूपी राँड का साथ है, फिर हम जीवनचक्र रूपी चरखा को मौन धारण करें।

कबीरदास कहते हैं कि वही पण्डित और ज्ञानी है जो इस पद के रहस्य पर विचार करता है। ऐसा ज्ञान था कि परिचय पहले गुरु को प्राप्त हो उसके बाद वह सतगुरु बनकर सबसे मोक्ष प्रदान करे।

विशेष

1. ईश्वर प्राप्ति के लिए गुरु ज्ञान आवश्यक है।
2. सीधी सरल सधुक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।
3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास अलंकार का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग है।

10. अब मोहि ले चलि नणद के बीर, अपने देसा।
इन पंचनि मिलि लूटी हूँ, कुसंग आहि बदेसा।। टेक।।
गंग तीर मोरी खेती बारी, जमुन तीर खरिहानाँ।
सातौं बिरही मेरे निपजे, पंचूँ मोर किसानाँ ।।
कहै कबीर यह अकथ कथा है, कहताँ कही न जाई।
सहज भाइ जिहिं ऊपजै, ते रमि रहै समाई।। (14)

प्रसंग

प्रस्तुत पद डॉ. श्याम सुंदरदास द्वारा संपादित 'कबीर ग्रंथावली' के पद खंड के उपखंड 'राग गौड़ी' से उद्धृत है। इसके रचयिता निर्गुण संत कवि कबीरदास जी हैं। इस पद में कबीरदास जी ने आत्मा को पत्नी व परमात्मा को पति का रूपक देते हुए परमात्मा से विनती की है कि वे उन्हें अपने साथ ले चलें।

व्याख्या

हे परमात्मा। अब मुझे अपने देश ले चलो। इस संसार रूपी विदेश में काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह रूपी इन पाँचों के कुसंग ने मुझे लूट लिया है अर्थात् मुझे अपनी भक्ति–पथ से विलग कर दिया है। इड़ा रूपी गंगा के तट पर मेरी खेती–बाड़ी है, पिंगला रूपी यमुना के तट पर खलिहान हैं। सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य ये पाँच मेरे किसान हैं तथा ये पाँचों किसान सात प्रकार के अन्न उत्पन्न करते हैं। आध्यात्मिक सन्दर्भ में सात अन्न ज्ञान की सात भूमियाँ (शुभेच्छा विचारणा, तनुमानसा, सत्त्वापत्ति, असंसक्ति, परार्थभाविनी, तुर्यगा) हैं।

कबीरदास कहते हैं कि यह कथा अकथनीय है। इसको कहा नहीं जा सकता है जिसमें सहज रूप से भक्ति का भाव पैदा होता है वह परमात्मा में समा जाता है।

विशेष

1. आत्मा परमात्मा के साथ उसके लोक में जाने की इच्छा रखती है।
2. सीधी सरल सधुक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।
3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास तथा रूपकातिशयोक्ति अलंकारों का प्रयोग है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग है।

11. संतौं भाई आई ग्यान की आँधी रे।
भ्रम की टाटी सबै उडाँणी, माया रहै न बाँधी।। टेक।।
हिति चित की द्वै थूँनी गिराँनी, मोह बलिंडा तूटा।
त्रिस्नाँ छाँनि परि घर ऊपरि, कुबधि का भाँडाँ फूटा।।
जोग जुगति करि संतौं बाँधी, निरचू चुवै न पाँणी।
कूड़ कपट काया का निकस्या हरि की गति जब जाँणी।।
आँधीं पीछै जो जल बूठा, प्रेम हरि जन भींनाँ।
कहै कबीर भाँन के प्रगटे उदित भया तम षींनाँ।। (16)

व्याख्या

कबीरदास कहते हैं कि संत भाइयो! ज्ञान की आँधी आ गयी है। ज्ञान की आँधी आने से अर्थात् ज्ञान के प्रभाव के उदय से भ्रम की सारी टटिया उड़ गई है, भ्रम नष्ट हो गया है। माया का बन्धन अब साधक को बाँधने में असमर्थ हो गया है। मन में निहित राग–द्वेष से दोनों खम्भे उस ज्ञान की आँधी में गिर गये हैं और मोह की बँडेर भी टूट गयी है अर्थात् ज्ञानोदय से राग द्वेष और माया–मोह नष्ट हो गये हैं। तृष्णा रूपी छप्पर जो शरीर–रूपी घर में था वह भी टूट गया है। कुबुद्धि रूपी बर्तन भी फूट कर नष्ट हो गए हैं। – कबीरदास जी कहते हैं कि सन्तों ने योग की युक्ति से बाँध दिया है। परिणामतः अब जरा–सा भी पानी नहीं चूता है। हरि की गति को जान लेने के कारण अब शरीर से सारे विकार रूपी कूड़ा–करकट निकल गया है। ज्ञान की आँधी के पीछे जो जल बरसा है, उस प्रेम जल से हरि–भक्त भीग गया है। कबीरदास जी कहते हैं कि ज्ञान रूपी सूर्य के उदित होते ही अज्ञान रूपी अन्धकार भी विनष्ट हो गया है।

विशेष

1. इस पद में सांगरूपक के माध्यम से ज्ञान की महिमा की प्रतिष्ठा की गयी है।
2. सीधी सरल सधुक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।
3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।

5. अनुप्रास व सांगरूपक अलंकारों का प्रयोग है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग है।

12. तननाँ बुनना तज्या कबीर, राम नाम लिखि लिया शरीर।। टेक।।
जब लग भरौं नली का बेह, तब लग टूटै राम सनेह।।
ठाड़ी रोवै कबीर की माइ, ए लरिका क्यूँ जीवै खुदाइ।
कहै कबीर सुनहुँ री माई, पूरणहारा त्रिभुवन राइ।। (21)

व्याख्या

कबीरदास जी कहते हैं कि उन्होंने कपड़ा बुनने का काम छोड़ दिया है और पूरे शरी पर राम का नाम लिख लिया है। वे कहते हैं कि जब मैं नली के छेद में तागा भरता हूँ तब तक राम का स्नेह टूट जाता है और ध्यान राम नाम की जगह तागा भरने पर चला जाता है।

कबीर के इस कर्म पर कबीर की माँ खड़ी होकर रोते हुए कहती है कि हे भगवान (खुदा)। यह लड़का कैसे जीयेगा अर्थात् इसका पालन–पोषण कैसे होगा। इस पर कबीरदास अपनी माँ को समझाते हुए कहते है कि हे माँ! सुनो, त्रिभुवननाथ सबका पालन करने वाला है।

विशेष

1. इस पद से कबीर की प्रभु के प्रति गहरी आस्था की अभिव्यक्ति हो रही है। 2. सीधी सरल सधुक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।
3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास, पदमैत्री व रूपक अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग है।

13. मन रे जागत रहिये भाई।
गाफिल होइ बसत मति खोवै, चोर मूसै घर जाइ।। टेक।।
षट चक की कनक कोठड़ी, बसत भाव है सोई।
ताला कूँजी कुलफ के लागे, उघड़त बार न होई।।
पंच पहरवा सोइ गये हैं, बसतै जागण लोगी।
करत बिचार मनहीं मन उपजी, नाँ कहीं गया न आया।
कहै कबीर संसा सब छूटा, राम रतन धन पाया।।(23)

व्याख्या

कबीरदास जी कहते हैं, हे मन! तुझे सदा जागते रहना चाहिए। षड्विकार रूपी चोर तुम्हारे घर में घुस आये हैं। तुम्हारी असावधानी से वे तत्त्व रूपी वस्तु चुरा ले जायेंगे। यह शरीर छः चक्रों से निर्मित सोने की कोठरी है। चेतना की कुण्डलिनी इसमें सोई हुई है। अज्ञान के ताले में साधना की कुंजी लगाते ही चेतना की कुण्डलिनी का जागरण हो जाएगा।

पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ सो गयी हैं अर्थात् वे विषयों के प्रति विमुख हो गयी हैं। इसलिये चेतना रूपी कुण्डालना जाग गयी हैं। चेतना की यह जाग्रति मैंने मन ही मन विचार करते हुए पाया। इससे प्राप्त करने के लिए कहीं आना–जा नहीं पड़ा। कबीरदास कहते हैं कि राम रत्न रूपी धन की प्राप्ति से सारे संशय छूट गये।

विशेष

1. कवि द्वारा आन्तरिक साधना पर बल दिया गया है।
2. सीधी सरल सधुक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।
3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास व रूपक अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग है।

14. चलन चलन सब को कहत है, ना जॉनौं वैकुंठ कहाँ है।। टेक।।
जोजन एक प्रमिति नहिं जाने, बातन ही वैकुंठ बषाने।
जब लग है वैकुंठ की आसा, तब लग नाही हरि चरन निवासा।।
कहें सुनें कैसे पतिअइये, जब लग तहाँ आप नहिं जइये।
कहै कबीर बहु कहिये काहि, साथ संगति बैकुंठहिआहि।।(24)

व्याख्या

कबीरदास कहते हैं कि चलने–चलने की बात तो सभी कहते हैं, लेकिन बैकुण्ठ (स्वर्ग) कहाँ है–यह कोई नहीं जानता। लोगों को एक योजन की नाप का ज्ञान नहीं है, फिर भी वे बातों से स्वर्ग का वर्णन करते रहते हैं। जब तक स्वर्ग प्राप्ति की आशा मन में निहित है तब तक हरि के चरणों में निवास (प्रीति) नहीं हो सकता है। जब तक स्वर्ग में स्वयं न जाए तब तक कहने–सुनने में विश्वास नहीं हो सकता है।

अन्त में कबीरदास कहते हैं कि ज्यादा कहने या वर्णन करने की जरूरत नहीं हैं। वास्तव में, साधु–संगति (सत्संगति) ही स्वर्ग है।

विशेष

1. कबीरदास ने इस पद में स्वर्ग की एक नयी परिभाषा दी है। सत्संगति को विशेष स्थान देते हुए उन्होंने उसे ही स्वर्ग मान लिया है।

2. सीधी सरल सधुक्कडी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।
3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश, प्रश्न आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग है।

15. संतों धागा टूटा गगन विनसि गया, सबद जु कहाँ समाई।
ए संसा मोहि निस दिन व्यापै, कोइ न कहै समझाई।। टेक।।
नहीं ब्रह्माण्ड पुनि नाँही, पंचतत भी नाहीं।
इला प्यंगुला सुखमन नॉही, ए गुण कहाँ समाहीं।
नहीं ग्रिह दारा कछू नहीं, तहियाँ रचनहार पुनि नॉहीं।
जीवनहार अतीत सदा संगि, ये गुण तहाँ समाहीं।।
तूटे बँधै बंधै पनि तूटै, तव तव होइ बिनासा।
तब को ठाकुर अब को सेवग, को काकै बिसवासा।।
कहै कबीर यहु गगन न बिनसै, जौ धागा उनमानौं।
सीखें सुने पढ़ें का होई, जो नहीं पदहि समाना।। (32)

व्याख्या

कबीरदास कहते हैं कि शरीर का धागा टूट गया, गगन (ध्यान की अवस्था) नष्ट हो गया। शब्द (नाद तत्व) कहाँ समायेगा। उसके लिए कोई स्थान ही नहीं रह गया। यह सन्देह (प्रीत) मुझे रात–दिन किये हुए है और इस बारे में मुझे कोई नहीं समझाता है। शरीर का, श्वास सूत्र (धागा) टूट जाने पर न '' रहता है, न पिण्ड रहता है और न ही पंच तत्त्व (धरती, जल, अग्नि, गगन, वायु) रहते हैं। इडा पिंगला मा भी नहीं रहती है। समझ नहीं आता है कि उनके गुण कहाँ समाविष्ट हो जाते हैं। वहाँ न तो घर न '' और न ही और भी कुछ बचता है इतना ही नहीं रचने वाला सृष्टा भी नहीं रह जाता है। ये गण केवल के हर्ता अर्थात् जीवन के नियामक, मायातीत ईश्वर में समाविष्ट हो जाते हैं। विनाश फिर निर्माण नि विनाश, इस प्रकार यह विनाश का खेल चलता रहता है। तब का स्वामी अबका सेवक बन जाता है। और पर विश्वास करे? कबीर कहते हैं ब्रह्म रूप गगन का कभी नाश नहीं होता है। यदि ध्यान का धागा अपनी जी से जुड़ जाये। सीखने से, पढ़ने से, सुनने से क्या होता है, यदि कोई ईश्वर के चरणों में लीन नहीं हो पाता।

विशेष

1. संसार की नश्वरता पर प्रकाश डाला गया है।
2. सीधी सरल सधुक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।
3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।

4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास व रूपक अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग है।

16. भाई रे विरले दोसत कबीरा के, यहु तत बार बार काँसों कहिए।
भानण धड़ण सँवारणा संम्रथ, ज्यूँ राषै त्यूँ रहिये।। टेक।।
आलम दुनों सबै फिरि खोजी, हरि बिन सकल अयानाँ।
छह दरसन छ्यानबै पाषंड, आकुल किनहुँ न जानाँ ।।
जप तप संजम पूजा अरचा, जोतिग जग बौरानाँ।
कागद लिखि लिखि जगत मुलानाँ, मनहीं मन न समानाँ।।
कहै कबीर जोगी अरु, जंगम ए सब झूठी आसा।
गुर प्रसादि रटौ चात्रिग ज्यूँ, निंहचै भगति निवासा।।(34)

व्याख्या

कबीरदास कहते हैं कि हे भाई! मेरे थोड़े–से दोस्त हैं। इस सत्य–तत्त्व को बार–बार किससे कहूँ। संहार करने, सृजन करने तथा पालन में समर्थ परमात्मा जैसे रखेगा वैसे रहूँगा। दुनिया के सभी लोगों ने खोज कर देखा है कि बिना हरि के सभी अज्ञानी हैं। दुनिया के लोग छः दर्शन, छियान्नवें पाखंडों में व्याकुल रहते हैं, लेकिन तत्त्व को (परमात्मा को) कोई नहीं जानता है। दुनिया जप, तप, संयम, पूजा अर्चना, ज्योतिष आदि के चक्कर में पागल हो रही है। लोग ग्रन्थों की रचना करते जा रहे हैं और अहंकार कर रहे हैं। लेकिन कबीरदास कहते कि यह सब झूठी आशा है कि योगी और जंगम बनने से ही परमात्मा की प्राप्ति होगी। गुरु की कृपा से चातक के तुल्य आनन्द–भाव से जो परमात्मा का स्मरण करता है उसे ही भक्ति की, परमात्मा की प्राप्ति होती है।

विशेष

1. छः दर्शन–न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्वमीमांसा उत्तर मीमांसा या वेदान्त तथा छियान्नवें पाखंड–योगी = 12, जंगम = 18, शेवड़ा = 24, संन्यासी = 10, दरवेश = 14, ब्राह्मण = 18 हैं।
2. सीधी सरल सधुक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।
3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास, रूपक, उपमा, पुनरुक्तिप्रकाश आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. संबोधन शैली का प्रयोग है।

17. सो कछु बिचारहु पंडित लोई, जाकै रूप न रेष वरण नहीं कोई।।टेक।।

उपजै प्यंड प्रान कहाँ थें आवै, मूवा जीव जाइ कहाँ समावै ।
इंद्री कहाँ करिहि विश्रामा, सो कत गया जो कहता रामा।
पंचतत तहाँ सबद न स्वाद, अलख निरंजन विद्या न बादं ।
कहै कबीर मन मनहि समाना, तव आगम निगम झूट करि जानाँ।। (37)

व्याख्या

जिसका न कोई रूप है, न रेखा है, न वर्ण है, हे पंडित! उस परमतत्त्व परमात्मा पर विचार करो। यह शरीर कहाँ से पैदा होता है, शरीर में प्राण कहाँ से आता है, मृत जीव किसमें समाता है, इन्द्रियाँ कहाँ विश्राम करती हैं, जो वाणी राम नाम का जप कर रही थी, वह कहाँ गयी? जहाँ पर न तो पंच तत्त्व (क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर) हैं, न शब्द है, न स्वाद है, न विद्या–वाद है। वहाँ केवल अलख–निरंजन है।

कबीरदास कहते हैं कि जब मन मन में समाविष्ट हो गया तब आगम–निगम सब असत्य भासित होने लगे।

विशेष

1. निर्गुण निराकार ईश्वर सर्वत्र विद्यमान है।
2. सीधी सरल सधुक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।
3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास, उल्लेख व पदमैत्री अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. संबोधन शैली का प्रयोग है।

18. जौं पै बीज रूप भगवाना, तौ पंडित का कथिसि गियाना।। टेक।।
नहीं तन नहीं मन नहीं अहंकारा, नहीं सत रज तम तीन प्रकारा।।
विष अमृत फल फले अनेक, बेद रु बोधक हैं तरु एक।
कहै कबीर इहै मन माना, काहिधूँ छूट कवन उरझाना।।(38)

व्याख्या

सांख्य और योग से सम्बद्ध दार्शनिक चिन्तन का विरोध करते हुए कबीरदास कहते तर संसार का मूल कारण भगवान है तो पंडित लोग किस ज्ञान की बातें करते हैं। तन, मन, अंहकार, सत, रज और तम ये प्रकृति के मूल कारण नहीं हैं। (ध्यान रहे कि सांख्यवादियों के अनुसार तन, मन और मूल कारण त्रिगुणात्मक प्रकृति– सत, रज और तम है।) कर्म रूपी वृक्ष पर अमृत और विष के फले हुए हैं। वेद और सारे ज्ञान (दर्शन) इस बात को स्वीकार करते हैं।

कबीरदास कहते हैं कि मन इसी में उलझा हुआ है। भला बताइये इसमें बँधा हुआ मन कैसे सकेगा?

विशेष

1. वेदान्त मत की पर प्रस्तुति हुई है।

2. सीधी सरल सधुक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।
3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. रूपकातिशयोक्ति और वक्रोक्ति अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. संबोधन शैली का प्रयोग है।

19. पांडे कौन कुमति तोहि लागि, तूँ राम न जपहि अभागी।। टेक ।।
वेद पुरान पढ़त अस पॉडे, खर चंदन जैसें भारा।
राम नाम तत समझत नाँही, अंति पड़े मुखि छारा।।
बेद पढयाँ का यहु फल पॉडे, सब घटि देखैं रामा।
जन्म मरन थैं तो तूं छूटै, सुफल हूँहि सब कॉमाँ।।
जीव बधत अरु धरम कहत हो, अधरम कहाँ है भाई।
आपन तो मुनिजन है बैठे, का सनि कहौ कसाई।।
नारद कहे व्यास व्यास यों भाषै, सुखदेव पूछो जाई।
कहै कबीर कुमति तब छूटे, जे रहौ राम ल्यो लाई।। (39)

व्याख्या

कबीरदास जी कहते हैं कि हे पंडित! तुम्हें कुबुद्धि लग गयी है। हे अभागे! तू राम का जप क्यों नहीं करता है। हे पंडित! तुम वेद–पुरान को बिना समझे हुए वैसे पढ़ते हो जैसे चन्दन के सुवास का अनुभव किए बिना गधा उसके भार को ढोता है। तू राम नाम के रहस्य को नहीं जानता है, इसलिए अंत में तुम्हारे मुख में राख पड़ेगी।

हे पंडित! वेद पढ़ने का यही फल है कि सारे शरीर में (समस्त जीवों में) राम का दर्शन करो। ऐसी प्रतीत से आवागमन का बंधन छूटता है और सारी कामनाएं पूरी होती हैं।

कबीर पंडित लोगों से प्रश्न करते हुए कहते हैं कि यदि तुम जीवन–हत्या को धर्म कहते हो (वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति) तो भला बताइये अधर्म कहाँ है? आप जो मुनि बन गये हो तो किसे कसाई कहा जाये? नारद कहते हैं, व्यास बोलते हैं और शुकदेव भी पूछने पर बताते हैं कि जब राम से प्रीति लगाओगे तभी कुबुद्धि का विनाश होगा।

विशेष

1. जीव–हत्या का निषेध किया गया है तथा वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' पर गहरी आपत्ति देखी जा सकती है।
2. सीधी सरल सधुक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।
3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।

4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास, वक्रोक्ति तथा उदाहरण अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. संबोधन शैली का प्रयोग है।

20. जो पै करता बरण बिचारै, तौ जनमत तीनि डाँड़ि किन सारै।।टेक।।
उत्पत्ति ब्यदँ कहाँ थै आया, जो धरी अरु लागी माया।
नहीं को ऊँचा नहीं को नीचा, जाका प्यंड ताही का सींचा।
जे तूं बाँभन बभनी जाया, तो आँन बाँट ह्वै काहे न आया।
जे तूँ तुरक तुरकनी जाया, तो भीतरि खतना क्यूँ न कराया।
कहै कबीर मधिम नहीं कोई, सो मधिम जा मुखि राम न होई।। (41)

व्याख्या

जातिगत समानता का प्रतिपादन करते हुए कबीरदास कहते हैं कि यदि परमात्मा के मन में वर्ण–विचार होता तो वह जन्म से ही सबके मस्तक पर तिलक का चिह्न लगा देता।

कबीर का प्रश्न है कि सृष्टि की उत्पत्ति का बिन्दु (वीय) कहाँ से आया, जिसे धारण करके माया धारण उसी से सम्पृक्त हो गयी। पुनः कबीरदास जी कहते हैं कि कोई ऊँचा–नीचा नहीं है। सभी परमात्मा के बिन्दु से सिंचित हैं।

यदि ब्राह्मण ब्राह्मणी से जन्मा है तो वह भी उसी रास्ते से आया, जिससे अन्य लोग आते हैं। यदि तुरक तुकरनी से उत्पन्न है तो उसने भीतर ही खतना क्यों नहीं करवा लिया। कहने का आशय है कि यह वर्ण–व्यवस्था और जाति–व्यवस्था मानव द्वारा बनाई हुई है। परमात्मा द्वारा नहीं है। उसकी दृष्टि में सभी समान हैं।

कबीरदास कहते हैं कि कोई नीचा नहीं है। नीचा वही है जो राम–नाम का अपने मुख से जप नहीं करता है।

विशेष

1. कबीर समाज सुधारक हैं, कबीर युगान्तरकारी हैं, कबीर विद्रोही हैं, कबीर मानवतावादी हैं आदि मान्यताओं की पुष्टि इस पद में हो जाती है।
2. सीधी सरल सधुक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।
3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास, प्रश्न व उल्लेख अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. संबोधन शैली का प्रयोग है। .

21. कथता बकता सुनता. सोई, आप बिचारै सो ग्यानी होई।। टेक।।
जैसे अगनि पवन का मेला, चंचल बुधि का खेला।
नव दरवाजे दरौँ दुवार, बूझि रे ग्यानी ग्यान विचार।।
देहौ माटी बोलै पवनाँ, बूझि रे ज्ञानी मूवा स कौनाँ।
मुई सुरति बाद अहंकार, वह न मूवा जो बोलणहार।।
जिस कारनि तटि तीरथि जाँही, रतन पदारथ घटही माहीं।
पढ़ि पढ़ि पंडित बेद बषाँणे, भीतरि हूती बसत न जाँणै।।
हूँ न मूवा मेरी मुई बलाइ, सो न मुवा जौ रह्या समाइ।
कहै कवीर गुरु ब्रह्म दिखाया, मरता जाता नजरि न आया।। (42)

व्याख्या

कबीरदास जी कहते हैं कि वही (परमात्मा) कहने वाला, बोलने वाला और सुनने वाला है। आत्म तत्त्व पर विचार करता है, वही ज्ञानी है। जैसे आग और पवन का मेल हो, वैसे यह जगत चंचल बाट का खेल है। इस शरीर रूपी गृह में नौ दरवाजे (नौ इन्द्रियों का द्वार) और ब्रह्मरन्ध्र का दसवाँ द्वार है। इस ज्ञान–विचार को कोई ज्ञानी ही समझ सकता है। मिट्टी की देह में पवन (प्राण) बोलता है। ज्ञानी ही समझ सकता है इसमें किसकी मृत्यु होती है। सुरति (स्मृति), वाद और अंहकार की मृत्यु होती है, जो बोलने वाला था और मूल तत्त्व, वह नहीं मरा।

मनुष्य जिसकी खोज में तीर्थ जाते हैं, वह रत्न–पदार्थ (परमात्मा) शरीर में ही विद्यमान है। पढ़–पढ़ करके पण्डित वेद–शास्त्रों का वर्णन बखान तो करते हैं, लेकिन अन्तस में विद्यमान वस्तु (चौतन्य तत्त्व) को नहीं जानते।

मैं नहीं मरा, मेरी बला (माया) मर गयी। जो सर्व समाया हुआ था, वह भी नहीं मरा। कबीरदास कहते हैं कि सतगुरु ने परमात्मा–दर्शन कराया। अब कोई मरता–जलता दिखायी नहीं पड़ता है।

विशेष

1. आत्मा और परमात्मा की अमरता का विशेष कथन किया गया है।
2. सीधी सरल सधुक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।
3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास, उदाहरण आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. संबोधन शैली का प्रयोग है।

22. हम न मरै मरहिं संसारा, हँम कूँ मिल्या जियावनहारा।। टेक।।
अव न मरौं मरनै मन माँना, ते मूए जिनि राम न जाँना।
साकत मरे संत जन जीवे, भरि भरि राम रसाइन पीवै।।
हरि मरिहैं तो हमहूँ मरिहैं, हरि न मरै हँम काहे कूँ मरिहैं।
कहै कवीर मन मनहि मिलावा, अमर भये सुख सागर पावा।। (43)

व्याख्या

कबीरदास कहते हैं कि संसार नष्ट हो जाएगा, लेकिन हम (भक्त, साधक जन) नहीं मरेंगे, क्योंकि हमें जिलाने वाला अर्थात् अमरता देने वाला परमात्मा मिल गया है। अब मैं नहीं मरूँगा कि क्योंकि मेरा मन विषयों से विलग होने में सुखी हो गया है। वे ही मरेंगे जिन्होंने राम को नहीं जाना। शाक्त मरेंगे, लेकिन संत–जन जीयेंगे और राम रसायन का पान करेंगे। यदि हरि मरेंगे तभी हम मरेंगे और यदि हरि नहीं मरेंगे तो हम क्यों मरेंगे।

विशेष

1. कबीरदास जी ने आत्मा व परमात्मा में अभेद स्थापित किया है।
2. सीधी सरल सधुक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।
3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास, रूपक व यमक अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. संबोधन शैली का प्रयोग है।

23. लोका तुम्ह जकहत हौ नंद कौ, नंदन नंद कहौ धुं काकौ रे।
धरनि अकास दोऊ नहीं होते, तब यहु नंद कहाँ थौ रे।। टेक।।
जाँमैं मरै न सँकुटि' आवै, नाँव निरंजन जाकौ रे।
अबिनासी उपजै नहिं बिनसै, संत सुजस कहैं ताको रे।
लष चौरासी जीव जंत मैं भ्रमत नंदी थाकौ रे।
दास कबीर को ठाकुर ऐसो, भगति करै हरि ताकौ रे।। (48)

व्याख्या

निर्गुण परमात्मा के स्वरूप का निरूपण करते हुए कबीरदास कहते हैं कि लोगो! तुम कृष्ण को नंद का पुत्र कहते हो तो भला बताइये कि नंद किसके पुत्र हैं? जब धरती और आकाश दोनों नहीं थे तब यह नंद कहाँ थे।

मूल परमात्मा वही है जो न तो जन्म लेता है और न ही मरता है और उसका नाम निरंजन है। वह अविनाशी है। उसकी न तो उत्पत्ति होती है और न उसका विनाश होता है। संतगण उसी के सुयश का गान करते हैं। भगवान कृष्ण के पिता नन्द तो स्वयं चौरासी लाख योनियों का चक्कर लगाते हुए थक गये हैं। दास कबीर का स्वामी ऐसा अनुपम है कि हरि (कृष्ण) भी उसी की भक्ति करते हैं।

विशेष

1. इस पद में सगुण ब्रह्म और अवतार वाद का निषेध किया गया है।
2. सीधी सरल सधुक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।
3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।

5. अनुप्रास व विशेषोक्ति अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. संबोधन शैली का प्रयोग है।

24. निरगुण रॉम निरगुण रॉम जपहु रे भाई, अबिगति की गति लखी न श्जाई।।टेक।।
चारि बेद जाकै सुमृत पुरानाँ नौ ब्याकरनाँ मरम न जाँनाँ।।
चारि वेद जाकै गरड समाँनाँ, चरन कवल कँवला नहीं जाँनाँ।।
कहै कबीर जाकै भेदै नाँहीं, निज जन बैठे हरि की छाहीं।। (49)

व्याख्या

कबीरदास कहते हैं कि हे भाइयो! निर्गुण राम, निर्गुण राम का जप करो। इस अज्ञात परमात्मा की गति को देखा नहीं जा सकता है। चारों वेद, स्मृति पुराण, नौ व्याकरण जिसके रहस्य को नहीं जान पाये उसके विषय में कुछ भी कहना आसान नहीं है। शेषनाग और गरुड़ के समान आत्मीय चरण–कमलों में सदा रहने वाली लक्ष्मी भी उनके स्वरूप को नहीं जान पायी है। कबीरदास कहते हैं कि जिनके मन में कोई भेद, द्वैत दुराव–छिपाव नहीं है वही प्रभु–भक्त प्रभु की छाया में (शरण) बैठ सकता है।

विशेष

1. निर्गुण ब्रह्म की अनिर्वचनीयता का संकेत पद में किया गया है।
2. सीधी सरल सधुक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।
3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास व रूपक अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. संबोधन शैली का प्रयोग है।

25. लोका जानि न भूलौ भाई।
खालिक खलक खलक मैं खालिक, सब घट रह्यो समाई।। टेक।।
अला एकै नूर उपाया, ताकी कैसी निंदा।
ता नूर थे सब जग कीया, कौन भला कौन मंदा।।
ता अला की गति नहीं जॉनी गुरि गुड़ दीया मीठा।।
कहै कबीर में पूरा पाया, सब घटि साहिब दीठा।।(51)

व्याख्या

कवीरदास सृष्टि और सष्टा में किसी प्रकार का भेद नहीं मानते हैं। इसी मान्यता के कारण वे कहते हैं कि हे लोगो! तुम जानबूझकर भूल न करो। परमात्मा संसार के कण–कण में व्याप्त है। सारे संसार में वह विद्यमान है।

अतः दोनों को अलग–अलग नहीं देखना चाहिए।

परमात्मा ने एक ज्योति की उत्पत्ति की है। उसकी क्या निन्दा की जाये। उसी ज्योति से सम्पूर्ण संसार उत्पन्न हुआ है। फलतः उसकी सृष्टि में कोई अच्छा और बुरा नहीं है। सब एक जैसे हैं।

उस अल्लाह (परमात्मा) की गति (मर्म) को कोई नहीं जान पाया है।

कबीरदास कहते हैं कि जब सतगुरु ने मधुर उपदेश दिया, तब मैंने उस पूर्ण परमात्मा को प्राप्त किया और मुझे समस्त प्राणियों में उस परमतत्त्व का दर्शन हुआ।

विशेष

1. इस पद में सृष्टि और सृष्टा का अंतर समाप्त कर के अद्वैतवाद की प्रतिष्ठा की गयी है।
2. सीधी सरल सधुक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।
3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास और वक्रोक्ति अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. संबोधन शैली का प्रयोग है।

26. रॉम मोहि तारि कहाँ लै जैहो।
सो बैकुंठ कहौ धूँ कैसा, करि पसाव मोहि दैहो।। टेक।।
जे मेरे जीव दोइ जाँनत हौ, तौ मोहि मुकति बताओ।
एकमेक रमि रह्या सबनि मैं, तो काहे भरमावै।।
तारण तिरण जबै लग कहिये, तब लग तत न जाँनाँ।
एक रॉम देख्या सबहिन मैं कहै कबीर मन माँनाँ।। (52)

व्याख्या

कबीरदास कहते हैं कि हे राम! मुझे तार करके (मेरा उद्धार करके) कहाँ ले जाओगे? आप कृपा करके जिस स्वर्ग (बैकुण्ठ) को मुझे दोगे, भला बताइये वह बैकुण्ठ कैसा है? यदि मुझमें (जीवात्मा में) और आप में (परमात्मा में) किसी प्रकार का अन्तर है तो मुझे मुक्ति बताइये, मुक्ति प्रदान कीजिए। जब वह अकेला (परमात्मा) सभी जीवों में रमण कर रहा है तब मुझे क्यों भ्रमित कर रहे हो । जव तक तत्त्व (परम चैतन्य) का ज्ञान नहीं हो पाता है तभी तक तारने और तिरने की बात कही जाती है।

कबीरदास कहते हैं कि एक राम को ही मैंने सबमें देख लिया है और मेरा मन सारे कर्मों से मुक्त हो गया है।

विशेष–

1. इस पद में कबीरदास ने मुक्ति का निषेध करते हुए राम की सर्वव्यापक सत्ता को स्वीकार किया है।
2. सीधी सरल सधुक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।

3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास अलंकार का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. संबोधन शैली का प्रयोग है।

27. सोहं हंसा एक समान, काया के गुंण ऑनही आन।। टेक।।
माटी एक सकल संसारा, बहुविधि भाँडे घड़े कुंभारा।
पंच बरन दस दुहिये गाइ, एक दूध देखौ पतिआइ।
कहै कबीर संसार करि दूरि त्रिभवननाथ रह्या भरपूरि।। (53)

व्याख्या

कबीरदास जी कहते हैं कि सोऽहं और हंस में अर्थात् परमात्मा और जीवात्मा में कोई अन्तर नहीं है। दोनों एक समान हैं। शरीर के गुण अलग–अलग हैं। विधाता रूपी कुंभकार ने एक ही मिट्टी से नाना प्रकार के संसार रूपी बर्तनों की रचना की है। ये सारे बर्तन (भाँड) एक समान हैं। पाँच रंग की दस गायों को यदि दुहा जाये तो सवका दूध एक जैसा ही होगा।

कबीरदास कहते है कि सारे संशय को दूर कीजिए, क्योंकि त्रिभुवननाथ ही सर्वत्र विद्यमान हैं।

विशेष

1. जीव और ब्रह्म में एकता प्रतिपादित है।
2. सीधी सरल सधुक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।
3. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
4. अनुप्रास व रूपक अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
5. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
6. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

28. अरे भाई दोइ कहा सो मोहि बतायौ, बिचिहि भरम का भेद लगावौ।।टेक।।
जोनि उपाइ रचि द्वै धरनी दीन एक बीच भई करनी।
रॉंम रहीम जपत सुधि गई, उनि माला उनि तसबी लई।।।
कहै कबीर चेतहु रे भौंदू, बोलनहारा तुरक न हिंदू।।56।।

व्याख्या

कबीरदास कहते हैं कि हे भाइयो! यदि परमात्मा दो हैं तो मुझे बताइये। लोग बीच में ही भ्रम–भेद फैलाते हैं। योगियो, दो धरती और दो धर्म–ये सब विभेद फैलाने के काम हैं। राम और रहीम को जपते–जपते लोग यह भूल जाते हैं कि दोनों ही एक हैं।

कबीरदास कहते हैं कि हे मूर्ख! सावधान हो जाओ। शरीर में विद्यमान बोलने वाली आत्मा हिंदू या मुसलमान नहीं है।

विशेष

1. इस पद में ईश्वर की सर्वव्यापकता और समानता का वर्णन किया गया है और बताया गया है कि सारे मनुष्य एक हैं। उनकी जाति और उनका धर्म एक है।
2. सीधी सरल सधुक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।
3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास अलंकार का प्रयोग हुआ है।
6. उदबोधन शैली का प्रयोग हुआ है।

29. ऐसा भेद विगूचन भारी, बेद कतेब दीन अरु दुनियाँ, कौन पुरिष कौन
नारी।।टेक।।
एक बूंद एकै मल मूतर, एक चाँम एक चाँम एक गूदा।
एक जोति थें सब उतपनाँ, कौन बॉम्हम कौन सूदा।।
माटी का प्यंड सहजि उतपना, नाद रु ब्यंद समाना।
विनसि गयाँ थै का नाँव धरिहौ, पढ़ि गुनि हरि भ्रँन जाँना।।
रज गुन ब्रह्मा तम गुन संकर, सत गुन हरि है सोई।
कहै कबीर एक राँम जपहु रे, हिंदू तुरक न कोई।।(57)

व्याख्या

कबीरदास जी कहते हैं कि परमात्मा के निर्माण में मनुष्यों ने अनेक प्रकार की भेद की बाधाएँ बना डाली हैं। इसी भेद की दृष्टि के कारण वेद और कुरान में, धर्म और संसार में तथा नर और नारी में भेद किया जाता है जबकि मूल रूप में ये सब एक हैं।

कबीरदास जी कहते हैं कि एक बूंद तथा एक मलमूत्र से, एक चाम, एक ही माँस तथा एक ही ज्योति से सारी सृष्टि उत्पन्न हुई है। इस सृष्टि में सभी एक समान हैं। कोई ब्राह्मण या शूद्र नहीं है। मिट्टी का यह पार्थिक शरीर सहज रूप से पैदा हुआ है। जिस नाद और बिंदु से यह पैदा हुआ है उसी में यह समा भी जाता है। शरीर के नष्ट होने पर उसका नामरूप समाप्त हो जाता है। पढ़कर के भी परमात्मा के इस रहस्य को लोग जान नहीं पाते हैं। ब्रह्मा में रजोगुण की, शंकर में तमोगुण की तथा विष्णु में सतोगुण की विद्यमानता है।

कबीरदास कहते हैं कि कोई न तो हिन्दू है और न तुर्क। सभी में एक राम का निवास है। उसी एक का जप करो।

विशेष

1. अपनी समाज–विषयक, क्रान्तिकारी विचारधारा के अंतर्गत कबीरदास जी ने सारी दृष्टि की का प्रतिपादन किया गया है। हिन्दू और तुर्क में समानता प्रतिपादित की गई है।

2. सीधी सरल सुधक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।
3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास अलंकार का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग है।

30. काजी कौन कतेब. बषांनै।
पढ़त पढ़त केते दिन बीते, गति एकै नहीं जानें।। टेक।।
सकति से नेह पकरि करि सुंनति, बहु नवदूँ रे भाई।
जौर षुदाई तुरक मोहिं करता, तो आपै कटि किन जाई।।
हौं तौ तुरक किया करि सुंनति, औरति सौ का कहिये।
अरध सरीरी नारि न छूटे, – आधा हिंदू रहिये।।
छाँड़ि कतेव रॉंम कहि काजी, खून करता हौ भारी।
पकरी टेक कबीर भगति की, काजी रहै झष मारी।।(59)

व्याख्या

कबीरदास जी कहते हैं हे काजी! तुम किस कुरान की बात करते हो। धर्म–ग्रन्थों को पढ़ते–पढ़ते जाने कितने दिन बीत गये, लेकिन तुम उस परमात्मा की गति को (रहस्य को) नहीं जान सके। तुम्हें जोर–जबरदस्ती से प्रेम है। पकड़कर सुन्नत करते हो, लेकिन यह ठीक बात नहीं है।

कबीर कहते हैं कि यदि खुदा (परमात्मा) मुझे तुर्क (मुसलमान) बनाता तो सुन्नत करने की आवश्यकता नही पड़ती, वह अंग स्वतः कट कर गिर जाता। सुन्नत करके तो मुझे तुर्क बना दिया, लेकिन औरत से क्या कहोगे? नारी (पत्नी) को अर्द्धांगिनी कहा गया है, वह छोड़ी नहीं जा सकती है अतः आधा हिन्दू ही रहना पड़ता है।

कबीरदास काजी को सावधान करते हुए कहते हैं कि हे काजी! धर्म–ग्रन्थों को छोड़कर परमात्मा का जप करो। धर्म–ग्रन्थों (कुरान आदि) के बहाने से तुम बहुत खून करते हो। मैंने तो भक्ति का सहारा ले लिया है और काजी ग्रन्थों का सहारा लेने के कारण माथा पीट रहा है।

विशेष

1. इस पद में कवीर ने सुन्नत (मुसलमान बनाने की पद्धति) पर अपनी तीखी प्रतिक्रिया की है और कुरान आदि धर्मग्रन्थों के उस अंश निर्देश का निषेध किया है जो अमानवीय कार्यों की प्रेरणा देते हैं
2. सीधी सरल सुधक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।
3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।

5. अनुप्रास पुनरुक्ति प्रकाश आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।

7. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग है। .

31. मुलाँ कहाँ पुकारे दूरि, रॉम रहीम रह्या भरपूरि।। टेक।।
यहु तो अलहु गूंगा नाँही, देखै खलक दुनी दिल माँही।।
हरि गुन गाइ बंग मैं दीन्हाँ, काम क्रोध दोऊ बिसमल कीन्हाँ। ।
कहै कबीर यह मुलना झूठा, राम रहीम सबनि मैं दीठा।। (60)

व्याख्या

कवीरदास जी कहते हैं कि हे मुल्ला! तुम परमात्मा को दूर क्यों मानते हो? वह राम–रहीम सर्वत्र व्याप्त है। अल्लाह (परमात्मा) गूंगा नहीं है। उस परमात्मा का दर्शन सृष्टि में, संसार में और अन्तरात्मा में करो।

कबीरदास जी कहते हैं कि हरि गुणगान करके मैं बाँग देता हूँ और काम–क्रोध दोनों की बलि देता हैं। वस्तुतः यह मुल्ला झूठा है, असत्य भाषण करता है। राम–रहीम सबमें दिखायी पड़ते हैं।

विशेष

1. सृष्टि के कण–कण में ईश्वर की विद्यमानता का वर्णन किया गया है।

2. सीधी सरल सधुक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।

3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।

4. प्रसाद गण सर्वत्र विद्यमान है।

5. अनुप्रास अलंकार का सफल प्रयोग हुआ है।

6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।

7. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग है।

32. पढ़ि ले काजी बंग निवाजा, एक मसीति दसौं दरवाजा।। टेक।।
मन करि मका कबिला करि देही, बोलनहार जगत गुर येही।।
उहाँ न दोजग भिस्त मुकामाँ, इहाँ ही रॉम इहाँ रहिमाँनाँ।।
बिसमल तामस भरम के दूरी, पंचूँ भयि ज्यूँ होइ सबूरी।।
कहै कबीर मैं भया दीवाँनाँ, मनवाँ मुसि मुसि सहजि समानाँ।। (61)

व्याख्या

कबीरदास जी कहते हैं कि हे काजी! तुम बाँग दो और नमाज पढ़ो। एक शरीर रूपी मस्जिद के दस इन्द्रिय रूपी दस द्वार हैं। मन को मक्का और देह को काबा बनाकर बाँग दो और नमाज पढ़ो। बोलने वाला जगत् गुरु इसी शरीर में ही है। इसमें न तो स्वर्ग है और न नरक । इसमें ही राम और रहमान का निवास है। खून बखन (बलि), मोह और भ्रम को दूर कर दो, इसी के साथ पाँचों का भय (काम, क्रोध, लोभ, मद मोह) समाप्त हो जायेगा।

‘कबीरदास कहते हैं कि मैं राम के प्रेम में दीवाना हो गया हूँ और मन प्रसन्नता के साथ सहज समाधिस्थ हो गया है।

विशेष

1. ईश्वर की सहज साधना पर बल दिया गया है।
2. सीधी सरल सधुक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।
3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।'
7. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग है।

33. काहे री नलनी तूं कुम्हिलाँनी, तेरे ही नालि सरोवर पाँनी।। टेक।।
जल मैं उतपति जल में बास, जल में नलनी तोर निवास।।
ना तलि तपति न ऊपरि आगि, तोर हेतु कहु कासनि लागि।।
– कहैं कबीर जे उदिक समान, ते नहीं मूए हँमरे जॉन ।। (64)

व्याख्या

हे जीवात्मा रूपी कमलिनी! तू क्यों कुम्हला गयी है ? तेरे ही जड़ में तो सरोवर के पानी की आत्मिक चेतना की विद्यमान है। जल में तुम्हारी उत्पति होती है, जल में ही तुम्हारा अधिवास है, निवास है। न तुम्हारा तल तपता है और न ऊपर आग है। तो बताइये तुम्हें किससे अनुराग हो गया है जिससे तू मलिन है? कबीरदास कहते हैं कि जो जल के समान है वे मेरी समझ से नहीं मरेंगे।

विशेष

1. प्राकृतिक प्रतीकों से जीवात्मा और परमात्मा की एकता का निरूपण इस पद में किया गया है।
2. सीधी सरल सधुक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।
3. शन्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास, उपमा व अन्योक्ति अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

34. बागड़ देस लूवन का घर है, तहाँ जिनि जाइ दाशन का डर है।। टेक।।
सब जग देखौं कोई न धीरा, परत धूरि सिरि कहत अवीरा।।
न तहाँ तरवर न तहाँ पाँणी, न तहाँ सतगुर साधू बाँणी।।
न तहाँ कोकिला न तहाँ सूवा, ऊँचे चढ़ि चढ़ि हंसा मूवा।।
देश मालवा गहर गंभीर डग डग रोटी पग पग नीर।।
कहें कबीर घरहीं मन मानौं, गूंगे का गुड़ मूंगै जानौं।। (68)

व्याख्या

कवीरदास कहते हैं कि यह संसार रूपी बागड़ देश लू का घर है। वहाँ नहीं जाना चाहिए क्योंकि वहाँ पर जलने का डर रहता है। मुझे पूरे संसार में कोई भी धीर व्यक्ति नहीं दिखाई पड़ता है। सिर में तो धल पड़ती है, लेकिन धूल को अबीर कहते हैं।

वागड़ देश में न वृक्ष है और न पानी है। वहाँ सतगुरु की श्रेष्ठ वाणी भी नहीं है। न वहाँ कोयल है और न तोता। वहाँ हंस भी ऊँचे चढ़कर (पानी की खोज में हंस को काफी ऊँचे चढ़ना पड़ता है) मरते रहते हैं।

शरीर रूपी मालवा देश गहरा और गंभीर है। यहाँ पग–पग पर रोटी और पानी मिलता है। कबीरदास कहते हैं कि शरीर रूपी घर में ही मन आनंदित है। जिस प्रकार गूंगा व्यक्ति ही गुड़ का स्वाद जानता है, वह बता नहीं सकता कि गुड़ का स्वाद कैसा है। वैसे ही इस आनन्द को केवल मैं ही समझता हूँ। वास्तव में, वह अनुभूति का विषय है, अभिव्यक्ति का नहीं।

विशेष

1. इस पद में लोक के दो स्थानों को आधार बनाकर अध्यात्म–लोक की व्यंजना की गयी है।
2. सीधी सरल सधुक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।
3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश व लोकोक्ति अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग है।

35. कैसे नगरि करौं कुटवारी, चंचल पुरिष विचषन नारी।। टेक।।
बैल बियाइ गाइ भई बाँझ, बछरा दूहै तीन्यूँ साँझ ।।
मकड़ी धरि माषी छछि हारी, मास पसारि चीन्ह रखवारी।।
मूसा खेटव नाव विलइया, मीडक सोवै साप पहरइया।।
निति उठि स्याल स्यंघ सूँ झूझै, कहै कबीर कोई बिरला बूझै ।। (80)

व्याख्या

कबीरदास कहते हैं कि हे प्रभु। इस शरीर रूपी नगर की रक्षा कैसे करूँ। इस शरीर में रहने वाला पुरुष जीव भी बड़ा चंचल है और नारी (माया) बड़ी चतुर है।

यहाँ पर बड़ी विचित्र स्थिति है। यहाँ बैल बच्चा देता (बियाता) है अर्थात् अविवेक से सारे कार्य किये जाते हैं। गगन(विवेक) बंध्या है। बछरे (इन्द्रियाँ) का तीनों प्रहर (प्रातः, दोपहर, संध्या) दोहन होता है। मकड़ी (माया) के घर मक्खियाँ (अनेक वृत्तियाँ) सफाई करने वाली हैं। फैले हुए मांस (विषय वासना) की रक्षा करने वाली चील्ह (लोभवृत्ति) है। चूहा (मन) मल्लाह है ,बिल्ली (काम) नाव (प्रज्ञा) है। मेंढ़क (ज्ञान) सो रहा है और साँप (अज्ञान) पहरेदार हैं। नित्यप्रति उठकार स्थल (तृष्णा) सिंह (जीव) से युद्ध करता है। कबीरदास कहते हैं। कि इस उलट सन्दर्भो को कोई विरला व्यक्ति ही समझ सकता है।

विशेष

1. इस पदों पर सिद्धों का व्यापक प्रभाव देखा जा सकता है। सिद्ध ढेण्ढण पाद ने भी कुछ ऐसा ही लिखा है

बलद बिआ अल गविआ आबांझे,
पिटा दुहिए ए तिना साझे।
निति सिआला सिंह सभी जूझअ,
ढेण्ढण पाएट गीत बिरले बूझअ।।

2. सीधी सरल सधुक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।
3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास व प्रश्न अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग है। .

36. माया तजूँ तजी नहीं जाइ, फिर फिर माया मोहि लपटाइ।। टेक।।
माया आदर माया मान, माया नहीं तहाँ ब्रह्म गियाँन।।
माया रस माया कर जॉन, माया करनि ततै परान।।
माया जप तप माया जोग, माया बाँधे सबही लोग।।
माया जल थलि माया आकासि, माया ब्यापि रही चहुँ पासि।।
माया माता माया पिता, असि माया अस्तरी सुता।।
माया मारि करै व्यौहार, कहैं कबीर मेरे राम अधार।।(84)

व्याख्या

कबीरदास जी कहते हैं कि हे प्रभु! मैं माया को छोड़ना चाहता हूँ, पर वह छोड़ी नहीं जाती।। बार–बार माया मुझसे लिपटती है। माया के अनेक रूप हैं। माया आदर है, माया मान है, लेकिन जहाँ पर बह्मज्ञान है, वहां माया नही है। स्वाद को माया जानना चाहिए। माया के कारण ही मानव अपने 'प्राणों को तजता है। जप, तप, योग आदि बाह्याचार भी माया है। माया ही सब लोगों को आबद्ध किये हुए है। जल, थल माया है, आकाश माया है। चारों तरफ माया ही परिव्याप्त है। माता माया है, पिता माया है, स्त्री–पुत्री आदि सभी माया हैं।

कबीरदास जी कहते हैं कि मेरे प्राणाधार तो राम हैं, इसीलिए मैं माया को मार करके व्यवहार करता हूँ।

विशेष

1. इस पद में अनेक रूपा माया की सर्वव्याप्ति पर प्रकाश डाला गया है।
2. सीधी, सरल सधुक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।

3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास, रूपक और यमक अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग है।

37. हरि ठग जग कौ ठगौरी लाई, हरि के वियोग कैसे जीऊँ मेरी
माई।।टेक।।
कौन पूरिष को काकी नारी, अभिअंतरि तुम्ह लेहु बिचारी।।
कौन पूत को काको बाप, कौन मरै कौन करै संताप।।
कहै कबीर ठग सौं मन माना, गई ठगौरी ठग पहिचाना।।(89)

व्याख्या

कबीरदास कहते हैं कि परमात्मा बहुत बड़े ठग (मायावी) हैं। संसार को उन्होंने अपनी माया रूपी ठगी से व्याप्त कर रखा है। वह स्वयं माया के कारण दिखते नहीं हैं। इस स्थिति में आत्मा बिलखती हई कह रही है कि हे सखी! भला बताइये कि मैं हरि के वियोग में कैसे जीवित रहूँ? कबीरदास जी कहते हैं कि कौन किसका पति है कौन किसकी पत्नी है–इस सत्यता पर अभ्यंतर में विचार करो। कौन किसका पुत्र है और कौन किसका पिता कौन मरता है और कौन संतप्त (दुखी) होता है।

कबीरदास कहते हैं कि मेरा मन ठग (परमात्मा) में लग गया है। और मैंने ठग (परमात्मा) को पहचान लिया है। अतः उसकी माया नष्ट हो गयी है। अर्थात् अब माया मुझे आकृष्ट नहीं कर सकती है।

विशेष

1. कबीर के इस पद पर शंकराचार्य के इस श्लोक का प्रभाव देखा जा सकता है जिसमें सम्बन्धों की अनित्यता और परमात्मा की सत्यता का संकेत दिया गया है। वे लिखते हैं

   का तब कान्ता कस्ते पुत्रः
   संसारोऽयमतीव विचित्रः।
   कस्त्वं भोवा कुलः आयातः,
   तत्वं चिन्तय तदिदं भ्रातः।

2. सीधी, सरल सधुक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।
3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास, वक्रोक्ति व रूपक अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।

7. कबीर की तर्कशीलता की संलक्ष्य है।

38. विनसि जाइ कागद की गुड़िया, जब लग पवन तबै लग उड़िया।। टेक।।
गुड़िया कौ सबद अनाहद बोले, खसम लियै कर डोरी डोले।।
पवन थक्यो गुड़िया टहरानी, सीस धनै धुनि रोवै प्रॉनी।
कहै कबीर भजि सारंगपानी, नाही तर हैहै खैंचा तानी।। (91)

व्याख्या

कवीरदास कहते हैं कि कागज की यह गुड़िया (शरीर) है जो अवश्य ही नष्ट हो जायेगी। जब तक शरीर पवन (प्राण) है, तभी तक यह उड़ेगी। गुड़िया (शरीर) अनाहत शब्द (अनहदनाद) बोल रही है। इसके शिथिल होते ही गुडिया (शरीर) स्थिर हो जाएगी अर्थात् निष्चेष्ट–क्रिया हीन हो जाएगा और लोग सिर न करके विलाप करने लगेंगे। अतः कबीरदास कहते हैं कि भगवान विष्णु की उपासना करो, अन्यथा बड़ी परेशानी होगी।

विशेष

1. ईश्वर–भक्ति पर बल दिया गया है।
2. सीधी, सरल सधुक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।
3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास व रूपक अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग है।

39. मन रे तन कागद का पुतला।
लागै बूंद बिनसि जाइ छिन में, गरव कर क्या इतना।। टेक।।
माटी खोदहिं भीत उसारै, अंध कहै घर मेरा।
आवै तलव बाँधि लै चालै, बहुरि न करिहै फेरा।
खोट कपट करि यहु धन जोर्या, लै धरती मैं गाड्यौ।।
रोक्यो घटि साँस नहीं निकसै, ठौर ठौर सब छाड्यौ।।
कहै कबीर नट नाटिक थाके, मदला कौन बजावै।।
गये पषनियाँ उझरी बाजी, को काहू कै आवै।। (92)

व्याख्या

कबीरदास कहते हैं कि हे मन! यह शरीर कागज का पुतला है। बूंद (रोग आदि) के लगते ही यह क्षण–मात्र में विनष्ट हो जाता है। इसलिए इस नश्वर शरीर पर इतना अहंकार करना ठीक नहीं है। अज्ञानी मनुष्य मिट्टी खोदकर दीवार उठाता है और घर बनाता है तथा कहता है कि यह घर मेरा है, लेकिन जब परमात्मा के यहाँ से बुलावा

आता है और यम के दूत बाँधकर ले जाते हैं, तो फिर वहाँ से पुनः वापसी नहीं हो पाती है।

मनुष्य पाप और कपट करके धन को इकट्ठा करता है और उसे सुरक्षित रखने के लिए धरती में गाड़ता है, लेकिन जब शरीर में साँस थम जाता है तब धन नहीं निकाल पाता और सारा धन स्थान–स्थान पर ही छूट जाता है।

कबीर कहते हैं कि नट और नर्तक थक गये हैं, अब मर्दल कौन बजायेगा। पखावज बाजा बजाने वाले चले गये हैं और सारा दाँव उजड़ गया। ऐसी स्थिति में कौन किसके पास आयेगा।

विशेष

1. कवि ने स्पष्ट किया है कि यह संसार नश्वर है।
2. सीधी, सरल सधुक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।
3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास व रूपक अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. संबोधन शैली का प्रयोग हुआ है।

40. राम थोरे दिन को का धन करना, धंधा बहुत निहाइति मरना।। टेक।।
कोटि धज साह हरती बंधी राजा, क्रिपन को धन कौनें काजा।।
धन के गरवि राम नहीं जाना, नागा है जंम पै गुदराँनाँ।।
कहै कबीर चेतहु रे भाई, हंस गया कछु संगि न जाई।। (99)

व्याख्या

कवीरदास जी कहते हैं कि हे राम! थोड़े समय के लिए धन लेकर क्या करना है बहुत संशय हैं और मरण सुनिश्चित है। करोड़ों ध्वजों के स्वामी, हाथी वाले राजा भी काल के ग्रास बन चुके हैं यह धन किस काम का है। कबीरदास जी कहते हैं कि हे मनुष्य, तुम धन के गर्व के कारण तुम राम को नही पहचान पाये, लेकिन अन्त में तुम्हें नंगे यमराज के यहाँ जाना पड़ेगा, पेश होना पड़ेगा।

कबीर कहते हैं कि हे भाई! विचार करो। हंस (प्राण) चला जाता है। उसके साथ में कुछ नहीं जानते वह विलकुल अकेला जाता है।

विशेष

1. इस पद में धन की व्यर्थता व्यक्त की गयी है।
2. सीधी, सरल सधुक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।
3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास अलंकार का प्रयोग है।

6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. संबोधन शैली का प्रयोग है।

41. काह कूँ माया दुख करि जोरी, हाथि चूँन गज पाँच पछेवरी।। टेक ।।
नाँ को बँध न भाई साँघी, बाँधे रहे तुरंगम हाथी।।
मैडी महल वावड़ी छाजा, छाड़ि गये सव भूपति राजा।।
कहै कवीर राम ल्यौ लाई, धरी रही माया काहू खाई।। (100)

व्याख्या

कवीरदास जी कहते हैं कि हे मनुष्य! तूने कष्ट उठाकर इतनी माया (धन–सम्पत्ति) क्यों इकट्ठी 'की है। तेरे लिए थोड़ा आटा और पाँच गज की चादर पर्याप्त थी। इस संसार में अन्तिम बेला में न कोई भाई–बंधु होता है और न ही बंधे साथी होता है। घर के द्वार पर बंधे घोड़े और हाथी भी यहीं बँधे रह जाते हैं। इस पृथ्वी के बड़े–बड़े सम्राट, राजा भी अपने, वैभव गौरवपूर्ण महल और सुसज्जित वावड़ी भी राजा लोग यहीं छोड़ गये। अतः कबीरदास जी कहते हैं कि राम में ध्यान लगाओ। संग्रह की हुई माया (धन–सम्पति) को कोई और ही खाता है।

विशेष

1. धन–सम्पति की नश्वरता का वर्णन करते हुए ईश्वर–भक्ति पर बल दिया गया है।
2. सीधी, सरल सधुक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।
3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास अलंकार का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. संबोधन शैली का प्रयोग है।

42. हरि जननी मैं बालिक तेरा, काहे न औगुण बकसहु मेरा।। टेक।।
सुत अपराध करै दिन केते, जननी कै चित रहै न तेते।।
कर गहि केस करे जौ घाता, तऊ न हेत उतारै माता।।
कहैं कबीर एक बुधि बिचारी, बालक दुखी दुखी महतारी।। (111)

व्याख्या

कबीरदास जी कहते हैं कि हे प्रभु! तुम मेरी माता हो और मैं तुम्हारा पुत्र हूँ। फिर तुम मेरे अवगुणों को क्यों नहीं माफ कर देते हो? पता नहीं कितने दिन पुत्र अपराध करता रहता है, लेकिन माता के मन में उसके अपराध नहीं रहते हैं। यदि पुत्र माता के केश को पकड़कर मारता भी है तो भी माता के मन में उसके प्रति प्रेम कम नहीं होता है। कबीरदास बुद्धि से विचार करके कहते हैं कि पुत्र के दुःख से माता दुखी रहती है। .

विशेष

1. कबीर ने इस पद में परमात्मा को माता के रूप में प्रस्तुत करके वात्सल्य भाव की भक्ति का मार्मिक निरूपण किया है। .

2. सीधी, सरल सधुक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।
3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास, पुनरुक्ति प्रकाश व स्वभावोक्ति अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग है।

43. हरि मेरा पीव भाई, हरि मेरा पीव, हरि बिन रहि न सकै मेरा जीव ।। टेक।।
हरि मेरा पीव मैं हरि की बहुरिया, राम बड़े मैं छुटक लहुरिया।
किया स्यंगार मिलन कै ताँई, काहे न मिलौ राजा राम गुसाँई।।
अब की बेर मिलन जो पाँऊँ, कहै कबीर भौ जलि नहीं आँऊँ।। (117)

व्याख्या

कबीरदास कहते हैं कि परमात्मा मेरा प्रियतम है, उनके बिना मेरा जीवन (प्राण) नहीं रह सकता। वे पुनः कहते हैं कि परमात्मा मेरा प्रिय है और मैं उसकी बहुरिया (प्रियतमा) हूँ। राम बड़े हैं और मैं उनसे छोटी हूँ। मैंने उनसे मिलने के लिए श्रृंगार किया है। हे मेरे स्वामी राजा राम! तुम मुझे क्यों नहीं मिलते हो?

कबीरदास कहते हैं कि आत्मा कह रही है कि यदि इस बार प्रियतम से मिलन हो जाये तो मुझे पुनः संसार सागर में नहीं आना पड़ेगा।

विशेष

1. कांतासम्मित भक्ति की हृदयस्पर्शी योजना की गई है।
2. सीधी, सरल सधुक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।
3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास, रूपक व रूपकातिशयोक्ति अलंकारों का प्रयोग है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग है।

44. राम बिन तन की ताप न जाई, जल मैं अगनि उठी अधिकाई।। टेक।।
तुम्ह जलनिधि मैं जल कर मीना, जल मैं रही जलहि बिन सीना।
तुम्ह प्यंजरा मैं सुवनाँ तोरा, दरसन देहु भाग बड़ मोरा।।
तुम्ह सतगुरु मैं नौतम चेला, कहै कबीर राम रमूं अकेला।। (120)

व्याख्या

कबीरदास जी कहते हैं कि परमात्मा के बिना शरीर की दाहकता समाप्त नहीं होगी। संसार–सागर में भयंकर ज्वाला उठी हुई है। हे प्रभु! तुम सागर हो और मैं तुम्हारे जल में रहने वाली मछली हूँ। मैं जल में रहती हूँ और जल के बिना खिन्न हूँ। हे प्रभु! तुम पिंजड़ा हो और मैं उस पिंजड़े में बन्द तेरा तोता हूँ। तुम मुझे दर्शन दो, यह मेरा बहुत बड़ा भाग्य होगा। हे प्रभु! तुम मेरे सतगुरु हो और मैं तुम्हारा नौसिखिया (नवीनतम) शिष्य हूँ। मैं तो राम में अकेला ही रमण करता हूँ।

विशेष

1. कबीर को अनन्य भक्ति भावना उजागर हुई है।
2. सीधी, सरल सधुक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।
3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास, विरोधाभास, विशेषोक्ति व रूपक अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद. छंद का प्रयोग हुआ है।
7. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग है।

45. डगमग छाडि दै मन बौरा।
अव तो जरें बरें बनि आवै, लीन्हों हाथ सिंधौरा।। टेक।।
होइ निसंक मगन है नाचौ, लोग मोह भ्रम छाड़ौ।।
सूरौ कहा मरन थें डरपैं, संतों न संचौं भाड़ौ।।
लोक वेद कुल की मरजादा, इहै कलै मैं पासी।
आधा चलि करि पीछा फिरिहै है है जग मैं हाँसी।।
यह संसार सकल है मैला, राम कहै ते सूवा।।
कहै कबीर नाव नहीं छाँडौ, गिरत परत चढ़ि ऊँचा।। (129)

व्याख्या

कबीरदास जी कहते हैं–हे पागल मन! दुविधा (चंचलता) को छोड़ दे। अब तो हाथ में सिंधौरा (सौभाग्य कर सूचक प्रसाधन) ले लिया है, अतः अब जलने में ही कल्याण है। लोभ, मोह और भ्रम को छोड़कर, निर्भय होकर और प्रसन्न होकर नाचो। योद्धा मरने से नहीं डरता है और सती बर्तनों के संचय में नहीं लगी रहती है। लोक, वेद और कुल की मर्यादा गले की फाँसी है। यदि आधे रास्ते से (भक्ति पथ के आधे रास्ते से) कोई पीछे चलता है तो उनकी संसार में हँसी होगी।

यह सारा संसार गन्दा है जो राम का जप करता है, वही शुद्ध है। कबीरदास कहते हैं कि नाम जप नहीं छोड़ूंगा। गिरते–पड़ते ऊँचा चढ़ना ही है।

विशेष

1. मन की चंचलता का परित्याग करने तथा ईश्वर की भक्ति करने का संदेश दिया गया है।
2. सीधी, सरल सधुक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।
3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास व रूपक अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग है।

46. कहा भयौ तिलक गरै जपमाला, मरम न जानें मिलन गोपाला।।टेक।।
दिन प्रति पसू करै हरिहाई, गरे काठ बाकी बाँनि न जाई।।
स्वाँग सेत करणी मनि काली, कहा भयौ गलि माला घाली।।
विन ही प्रेम कहा भयौ रोये, भीतरि मैल बाहरि का धोये।।
गल गल स्वाद भगति नहीं धीर, चीकन चंदवा कहै कबीर।। (136)

व्याख्या

कबीरदास जी कहते हैं कि हे मनुष्यों! तुम्हें यदि गोपाल (परमात्मा) से मिलन का रहस्य नहीं ज्ञात है तो माथे पर तिलक और गले में जपमाला डालने से कोई लाभ नहीं है। पशु दिन–रात भगदड़ मचाये रहते हैं उनके गले में काठ बाँध दिया जाता है, लेकिन उनका स्वभाव नहीं बदलता। तुम्हारा आचरण व्यवहार–आडम्बर तो सफेद है, लेकिन तुम्हारी करणी काली है, मन मैला है, तो भला बताइये गले में माला डालने से क्या लाभ, बिना प्रेम के विलाप करने से क्या लाभ होगा। आत्मा तो मलिन है, फिर बाहर का शरीर धोने से क्या लाभ होगा अर्थात् कुछ नहीं।

अंत में कबीरदास जी कहते हैं कि भक्ति तरल स्वादिष्ट और चिकना चँदोवा नहीं है, वह हड़बड़ी से नहीं प्राप्त होती है। उसकी प्राप्ति के लिए धीरता चाहिए।

विशेष

1. इस पद से कथनी और करनी, तन और मन दोनों की ही पवित्रता पर बल दिया गया है।
2. सीधी, सरल सधुक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।
3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास, प्रश्न, दृष्टांत आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग है।

47. जौ पैं पिय के मनि नाही भये, तौ का परोसनि कै हुलसाये।। टेक।।

का चूरा पाइल झमकायें, कहा भयौ बिछुवा ठमकायें।।
का काजल स्यंदूर के दीयें, सोलह स्यंगार कहा भयौ कीयै।।
अंजन मंजन करै ठगौरी, का पचि मरै निगौड़ी बौरी।।
जौ पै पतिव्रता है नारी, कैसे ही रही सो पियहिं पियारी।।
तन मन जीवन सौपि सरीरा, ताहि सुहागिन कहै कवीरा।। (139)

व्याख्या

यदि कोई स्त्री अपने पति को अच्छी नहीं लगती है तो पड़ोसियों की प्रसन्नता से क्या? चूड़ी और पायल झमकाने से क्या? और बिछुवा के बजाने से क्या होगा? काजल और सिंदूर तथा सोलह शृंगार से क्या? अंजन और मंजन ठगने के लिए हैं, आकृष्ट करने के लिए हैं। ये पागल और अभागिन स्त्री उसमें अपने को क्यों विनष्ट कर रही है?

यदि नारी पतिव्रता है तो वह कैसे भी रहे, प्रिय को प्यारी लगती है कबीरदास कहते हैं कि जो तन, मन और जीवन को समर्पित कर देती है, वही नारी 'सुहागिन' है।

विशेष

1. कबीर ने इस पद में आध्यात्मिक संकेत दिया है। इस पद में प्रयुक्त स्त्री जीवात्मा का तथा पति–पुरुष परमात्मा का प्रतीक है। स्पष्ट है कि जिस प्रकार से पति को केवल शरीर से ही नहीं प्रसन्न किया जा सकता है, उसके लिए त्याग और समर्पण अपेक्षित है। उसी प्रकार परमात्मा को भी केवल ब्रह्माचारों से नहीं रिझाया सकता है उसकी भक्ति–पुष्टि के लिए आन्तरिक साधना अनिवार्य है।
2. सीधी, सरल सधुक्कड़ी भाषा का सहज प्रयोग द्रष्टव्य है।
3. शब्द योजना अत्यंत सार्थक तथा भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास, प्रश्न, पदमैत्री आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग है।

राग रामकली

48. जगत गुर अनहद कींगरी, वाजे, तहाँ दीरघ नाद ल्यौ लागे।। टेक।।
त्री अस्थान अंतरमृग छाला, गगन मंडल सींगी बाजे।।
तहुँआँ एक दुकान रच्यो हैं, निराकार ब्रत साजे।।
गगन ही माठी सींगी करि चुंगी, कनक कलस एक पावा।।
तहुँवा चबे अमृत रस नीझर, रस ही मैं रस चुवावा ।।
अब तौ एक अनुपम बात भई, पवन पियाला साजा।।
तीनि भवन मैं एकै जोगी, कहौ कहाँ बसै राजा।।

विनरे जानि परणऊँ परसोतम, कहि कबीर रँगि राता।

यह दुनिया काँई भ्रमि भुलाँनी, मैं राम रसाइन माता।। (153)

व्याख्या

कबीरदास जी कहते हैं कि परमात्मा अनहदनाद रूपी वीणा के समान बज रहा है। इस दीर्घनाद में ध्यान लग गया है। भीतर की त्रिकुटी का स्थान ही मृगछाला है और ब्रह्मरन्ध्र में शृंगी बज रही है। वहाँ पर एक दुकान बनायी गयी है। इस दुकान पर निराकार की साधना हो रही है। गगन (ब्रह्मरन्ध्र) भट्ठी (कपाल कुहर) है। शृंगी (नली) सोने का कलश (पंक्ति मन) है। वहाँ पर अमृत रस का झरना चू रहा है। महारस भक्ति रस में चू रहा है। अब तो एक अनूठी बात हो गयी कि पवन (पाँच प्राणों) ने पियाला को सजा डाला। तीनों भुवनों (तन, मन, प्राण) में एक ही योगी (परमात्मा) है। बताओ, यह राजा कहाँ रहता है? बिना जाने उस पुरुषोत्तम (परमात्मा) के प्रति प्रणत हूँ।

कबीर कहते हैं कि मैं उसके रंग (प्रेम) में अनुरक्त हूँ। यह संसार भ्रम में क्यों भूला है। मैं तो राम रसायन कृ में (रामभक्ति में) मत्त हूँ।

विशेष

1. इस पद में स्पष्ट किया गया है कि अनहद नाद में ध्यान केन्द्रित करने पर ही परमात्मा की अनुभूति का आनन्द प्राप्त होता है।
2. सरल, सहज व प्रवाहमयी सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है।
3. शब्द चयन भावानुकूल व अभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. सांगरूपक तथा वक्रोक्ति अलंकार का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. राग रामकली का प्रयोग हुआ है।

49. अकथ कहाँणी प्रेम की, कछु कही न जाई,

गूंगे केरी सरकरा, बैठे मुसुकाई।। टेक।।

भोमि बिनाँ अरू बीज विन, तरबर एक भाई।

अनँत फल प्रकासिया, गुर दीया बताई।

कम थिर वैसि बिछारिया, रामहि ल्यौ लाई।

झूठी अनभै विस्तरी सब थोथी बाई।।

कहै कबीर सकति कछु नाही, गुरु भया सहाई।।

आँवण जाँणी मिटि गई, मन मनहि समाई।। (156)

व्याख्या

प्रेम की कहानी अकथनीय है। उस विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता है। वह गूँगे की शक्कर की तरह है। बैठा–बैठा स्वाद लेता है और मुस्काता है, किन्तु उस स्वाद को बता नहीं पाता है।

बिना भूमि और बिना बीज के एक वृक्ष (शरीर, संसार परमात्मा आदि) है जिस पर अनंत फल लगे हैं। हे मनुष्यो! सतगुरु ने इसका ज्ञान दे दिया है। अतः तुम मन स्थिर करके, बैठ करके विचार करो। राम में ध्यान लगाओ। सर्वत्र झूठे अनुभव बिखरे हैं। सारी वायु भी झूठी है। कबीर कहते हैं कि मनुष्य में कुछ शक्ति नहीं है। गुरु की सहायता से जब आवागमन मिटता है तब मन (जीव–मन) मन (परमात्म–मन) में समा जाता है।

विशेष

1. इस पद में प्रेम की अवर्णनीयता की ओर संकेत किया गया है।
2. सरल, सहज व प्रवाहमयी सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है।
3. शब्द चयन भावानुकूल व अभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास, दृष्टांत व विभावना अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. राग रामकली का प्रयोग हुआ है।

50. अवधू सो जोगी गुर मेरा, जौ या पद का करै नबेरा।। टेक।।
तरवर एक पेड़ बिन ठाढ़ा, बिन फूलाँ फल लागा।
साखा पत्र कछू नहीं वाकै अष्ट गगन मुख बागा।।
पैर बिन निरति कराँ बिन बाजै, जिभ्या हीणा गावै।
गायणहारे के रूप न रेषा, सतगुर होई लखावे ।।
पषी का षोज मीन का मारग, कहै कबीर विचारी।
अपरंपार पर परसोतम, वा मूरति बलिहारी।। (165)

व्याख्या

कबीरदास जी कहते हैं कि हे अवधूत! उस योगी को ही मैं अपना गुरु कहुँगा, है जो इस पद को स्पष्ट कर दे। एक वृक्ष बिना मूल के खड़ा है। बिना फूलों के उस पर फल लगे हैं। उस पर न तो शाखाएँ हैं और न पत्ते । उसका मुँह आँखों की ओर फैला हुआ है। वह पैर के बिना नृत्य करता है, हाथ के बिना बजाता है और जीभ के बिना गाता है। गायन करने वाले का न रूप है न रेखा। सतगुरु ही उसको दिखा सकता है। कबीरदास विचारपूर्वक कहते हैं कि उस परमतत्त्व की प्राप्ति के दो पथ हैं–पक्षी मार्ग और मछली मार्ग। पुरुषोत्तम सीमातीत है, उसके स्वरूप पर मैं अपने को अर्पित करता हूँ।

विशेष

1. इस पद में निराकार परमात्मा के स्वरूप के बारे में बताया गया है।
2. सरल, सहज व प्रवाहमयी सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है।
3. शब्द चयन भावानुकूल व अभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।

5. अनुप्रास व विभावना अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. राग रामकली का प्रयोग हुआ है।
8. वैसे तो सिद्धों और योगियों ने मुक्ति के तीन मार्ग–पिपीलिका मार्ग, विहंगम मार्ग और मीन मार्ग–बताये है, लेकिन इस पद में कबीर ने अंतिम दो मार्गों की ही चर्चा की है। विहंगम और मीन मार्ग दोनों से ही गमन के कोई चिह्न दृष्टिगत नहीं होते हैं। महाभारत में भी ऐसा ही उल्लेख मिलता है

    शकुन्तानामिवाकाशे मत्स्यानामिव चोदके।

    पदम् यथा न दृश्यते ज्ञानविदा गतिः।।

51. लाधा है कछू लाधा है ताकि पारिष को न लहै।

अबरन एक अकल अबिनासी, घटि घटि आप रहै।। टेक।।

तोल न मोल माप कछु नाहीं, गिणती ग्यॉन न होई।

नाँ सो भारी नाँ सो हलका, ताकी पारिष लषै न कोई।।

जामैं हम सोई हम हा मैं, नीर मिले जल एक हूवा।।

यों जाँणें तो कोई न मरिहैं, बिन जाँणे थें बहुत मूवा।।

दास कबीर प्रेम रस पाया, पीवणहार न पाऊँ ।

विधनाँ बचन पिछाँड़त नाही, कहु क्या काढ़ि दिखाऊँ।।(169)

व्याख्या

कबीरदास कहते हैं कि मैंने उस ब्रह्म को प्राप्त किया है, कुछ प्राप्त किया है, लेकिन उसकी पहचान कोई नहीं कर सकता । वह परमात्मा वर्णहीन है, अकेला है, अंगहीन है, अविनाशी है और प्रत्येक घट में विद्यमान है। उसका न तो कोई तोल है, न मोल है, न माप है और गिनती से भी उसका ज्ञान नहीं हो सकता है। न वह भारी है, न वह हल्का है। उसकी पहचान कोई नहीं कर सकता है। मुझसे ही वह पैदा होता है और हमारे में ही वह विद्यमान है। जैसे नीर मिलने से जल–जल एक हो जाता है, वैसे ही जब जीवात्मा और परमात्मा का मिलन होता है, तब यह भेद मिट जाता है। ब्रह्म को जो इस प्रकार से जानेगा वह नहीं मरेगा, बिना जाने लोग

मरेंगे।

कबीरदास कहते हैं कि भक्ति प्रेम का रस प्राप्त हो गया है, लेकिन पीने वाला नहीं मिल रहा है। जब विधाता इस वचन को पहचानते नहीं तो बताओ उन्हें निकाल कर क्या दिखाऊँ?

विशेष

1. इस पद में ब्रह्मानुभूति का विशेष रूप से वर्णन किया गया है।
2. सरल, सहज व प्रवाहमयी सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है।
3. शब्द चयन भावानुकूल व अभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।

5. अनुप्रास, पुनरुक्ति प्रकाश व दृष्टांत आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।

7. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

52. अवधू ऐसा ग्यान विचार,

भेरै चढ़े सु अधधर डूबे, निराधार भये पारं।। टेक ।।

ऊघट चले सु नगरि पहुँचे, बाट चले ते लूटे।

एक जेवड़ी सब लपटाँने, के बाँधे के छूटे।।

मंदिर पैसि हूँ दिसि भीगे, बाहरि रहे ते सूका।।

सरि मारे ते सदा सुखारे, अनमारे ते दूषा।।

बिन नैनन के सब जग देखै, लोचन अछते अंधा।

कहै कबीर कछु समछि परी है, यह जग देख्या धंधा।। (175)

व्याख्या

हे अवधूत! ऐसा ज्ञान विचारणीय है। जो नौका पर चढ़े थे, वे बीच धारा में डूब गये और जो बिना आधार के थे वे पार हो गये अर्थात् बाह्याचारों की नौका पर चढ़ने वाले डूब गये और इनसे विमुख रहने वाले भवसागर से पार हो गये। जो विकट रास्ते से चले वे नगर (गन्तव्य) तक पहुँच गये और जो निश्चित मार्ग से चले वे लूट लिये गये। सभी एक रस्सी (माया) में आबद्ध हैं। किसे मुक्त कहा जाये और किसे बद्ध। जो मन्दिर में रहते हैं वे चारों तरफ से भीगे रहते हैं और जो मन्दिर के बाहर रहते हैं वे सूखे रहते हैं। गुरु के बाणों से जो विद्ध हैं वे सुखी हैं और जो विद्ध नहीं हैं वे दुखी हैं। बिना नेत्रों के सब संसार देखते हैं और नेत्र होते हुए लोग अंधे हैं। कबीरदास कहते हैं कि मैंने समझ लिया है कि यह संसार प्रपंच है।

विशेष

1. कबीर ने इस पद में बताया है कि बाह्याचारों से और वासनाओं से आबद्ध होकर प्रभु का दर्शन नहीं किया जा सकता है। प्रभु के दर्शन के लिए इनसे अनासक्त होना पड़ेगा और आत्म केंद्रित बनना पड़ेगा।

2. सरल, सहज व प्रवाहमयी सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है।

3. शब्द चयन भावानुकूल व अभिव्यक्ति में सहायक है।

4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।

5. विरोधाभास, विभावना और विशेषोक्ति अलंकार का प्रयोग हुआ है।

6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।

7. राग रामकली का प्रयोग हुआ है। .

53. संत धोखा कासूँ कहिए।

गुंण मैं निरगुंण निरगुंण मैं गुण है, बाट छाँड़ि क्यूँ बहिए।। टेक ।। अजरा अमर कथै सब कोई, अलख न कथणां जाई।

नाति सरूप बरण नहीं जाकै, घटि घटि रह्यो समाई।।
प्यंड ब्रह्मड कथै सब कोई, वाकै आदि अरु अंत न होई।
प्यंड ब्रह्मड छाडि जे कथिए, कहै कवीर हरि सोई।।(180)

व्याख्या

कबीरदास कहते हैं कि हे सन्तो, धोखे (भ्रम) की बात किससे कही जाये। गुण में निर्गुण है और निर्गुण में गुण है, इस मार्ग को छोड़कर क्यों चला जाये। परमात्मा को सभी लोग अजर–अमर कहते हैं, परन्तु अलक्ष्य का कथन नहीं किया जा सकता है। उसका (परमात्मा का) न तो स्वरूप है, न वर्ण है, फिर भी वह घट–घट में समाया हुआ है। सभी पिंड–ब्रह्माण्ड की चर्चा करते हैं, लेकिन उसका आदि–अंत नहीं है। कबीर कहते हैं कि पिंड और ब्रह्माण्ड को छोड़कर जो चर्चा करता है, वही परमात्मा है।

विशेष

1. निर्गुण परमात्मा के स्वरूप की अनिर्वचनीयता इस पद में व्यक्त की गयी है।
2. सरल, सहज व प्रवाहमयी सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है।
3. शब्द चयन भावानुकूल व अभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास व पुनरुक्तिप्रकाश अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. राग रामकली का प्रयोग हुआ है।

54. पषाः पषी के पेषणै, सब जगत भुलाना,
निरपष टोइ हरि भजै, सौ साध सयाँनाँ।। टेक ।।
ज्यूँ पर तूं पर बँधिया, यूँ बँधे सब लाई।
जाकै आत्मद्रिष्टि है, साचा जन सोई ।।
एक एक जिनि जाणियाँ, तिनहीं सच पाया।
प्रेम प्रीति ल्यौ लीन मन, ते बहुरि न आया।।
पूरे की पूरी द्रिष्टि, पूरा करि देखे।
कहै कबीर कछू समूझि न परई, या ककू वात अलेखै ।। (181)

व्याख्या

कबीरदास जी कहते हैं कि पक्ष और विपक्ष के चक्कर में जगत के सारे लोग भूले हुए हैं। जो निष्पक्ष होकर परमात्मा की भक्ति करता है वही समझदार साधु है। सारे लोग जैसे –तैसे विनाश में आबद्ध हैं, लेकिन जिसके पास अन्तर्दृष्टि है, वही सच्चा भक्त है।

जिस व्यक्ति ने ईश्वर को अकेला (एक) समझा है, उसने ही सत्य को पाया है। परमात्मा के ध्यान में जिसका मन लीन है, वह संसार में दुबारा नहीं आता है अर्थात् उसका पुनर्जन्म नहीं होता है। पूर्ण को (परमात्मा

को) पूरी दृष्टि वाला ही पूर्ण रूप में देखता है।

कबीरदास कहते हैं कि या तो यह बात कुछ समझ में नहीं आती है, या बात ही कुछ अलक्ष्य है।

विशेष

1. ईश्वर की प्राप्ति के लिए निष्पक्ष दृष्टिकोण आवश्यक है।
2. सरल, सहज व प्रवाहमयी सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है।
3. शब्द चयन भावानुकूल व अभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास व उदाहरण अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. राग रामकली का प्रयोग हुआ है।

55. तेरा जन एक आध है कोई।
काम क्रोध अरु लोभ विवर्जित, हरिपद चीन्हें सोई।। टेक।।
राजस तॉमस सातिग तीन्यूँ, ये सब तेरी माया।।
चौथे पद कौं जे जन चीन्हें, तिनहिं परम पद पाया।।
असतुति निंद्या आसा छाँडै, तजै माँन अभिमानाँ।।
लोहा कंचन समि करि देखै, ते मूरति भगवानाँ ।।
च्यंतै तौ माधौ च्यंतामणि, हरिपद रमैं उदासा।।
त्रिस्ना अरु अभिमान रहित है, कहे कबीर सो दासा।।

व्याख्या

हे प्रभु! इस संसार में एक–आध व्यक्ति ही तेरा भक्त है। वही काम, क्रोध और लोभ को छोड़कर प्रभु–पद को पहचानता है। सत, रज और तम– ये त्रिगुण तेरी माया है। जो साधक त्रिगुणों से ऊपर उठकर चौथे स्थान (तुरीयावस्था) को समझता है, उसी को परमपद परमात्मा के साक्षात्कार की प्राप्ति का अवसर मिलता है। स्तुति, निन्दा,आशा,मान और अभिमान को जो तज देता है तथा लोहे को और सोने को जो बराबर देखता है, वही भगवान् की मूर्ति है। यदि वह चिन्तन करता है तो केवल चिन्तामणि स्वरूप परमात्मा का चिन्तन करता है और अनासक्त भाव से हरि–चरणों में रमण करता है। जो तृष्णा और अभिमान से रहित है, कबीरदास कहते हैं कि वही दास (भक्त) है।

विशेष

1. कबीर ने इस पद में भक्त का लक्षण गिनाया है। इसी क्रम में उन्होंने षट् विकारों से हीन रहने का उपदेश दिया है।
2. सरल, सहज व प्रवाहमयी सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है।
3. शब्द चयन भावानुकूल व अभिव्यक्ति में सहायक है।

4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।

5. अनुप्रास, रूपक और विरोधाभास अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।

7. राग रामकली का प्रयोग हुआ है।

8. भावसाम्यतुलसी ने 'मानस' के उत्तरकाण्ड में साधु के बारे में कुछ ऐसा ही लिखा है। वे कहते हैं–

विषय अलंपट सील गुनाकर । पर दुख दुख सुख सुख देखे पर।
सम अभूत रिपु बिगत बिरागी। लोभामरष हरष भय त्यागी।।
कोमल चित दीनन्ह पर दाया। मन वच क्रम सम भगति अमाया।।
सबहिं मानप्रद आयु अमानी। भरत प्रान सम मम ते प्रानी।।
निंदा अस्तुति उभय सम, ममता मम पद कंज।
ते सज्जन मम प्रानप्रिय,गुन मंदिर सुख पुंज।।

राग आसावरी

56. गोव्यंदे तूं निरंजन तूं निरंजन राया।
तेरे रूप नहीं रेख नाही, मुद्रा नहीं माया।। टेक।।
समद नाहीं सिषर नाहीं, वहता नाँही पवना।।
नाद नाँही ब्यद नाहीं काल नहीं काया।
जब तै जल व्यंब न होते, तब तूही राम राया।।
जप नाहीं तप नाहीं जोग ध्यान नहीं पूजा।
सिव नाँही सकती नाँही देव नहीं दूजा।।
रुगन जुग न स्याँम अथरवन, बेदन नहीं व्याकरना।
तेरी गति तूँहि जाँने, कबीरा तो मरना।। (219)

व्याख्या

कबीरदास जी कहते हैं कि हे गोविन्द! तुम निरंजन राम हो। तुम्हारा कोई रूप नहीं कर रेखा नहीं है, तुम्हारी मुद्रा नहीं है, तुम्हारी माया नहीं है। जब समुद्र नहीं थे, पर्वत नहीं थे, धरती–आकाश नहीं थे, चाँद और सूर्य दोनों में से एक भी नहीं था, पवन–प्रवाह नहीं था, बिन्दु नहीं था, काल और काया नहीं थी जब जल में बिम्ब नहीं होते थे, तब भी हे राजा राम! तू था। जब जप नहीं था, तप नहीं था, योग–ध्यान–पूजा नहीं था, शिव नहीं थे, शक्ति नहीं थी, कोई दूसरा देव नहीं था। ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद आदि वेद और व्याकरण नहीं था, तब भी तू था। कबीर कहते हैं कि हे गोविन्द ! तू अपनी अपनी गति को समझता है। कबीर तो तेरी शरण में है।

विशेष

1. गोविन्द की नित्यता का वर्णन किया गया है। उसकी अमरता और शाश्वतता भी लक्ष्य है।

2. भाषा सरल, सहज व प्रवाहमयी सधुक्कड़ी बोली है।
3. तद्भव शब्दावली की प्रधानता है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. अनुप्रास व उदाहरण अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. राग आसावरी का प्रयोग हुआ है।

57. कब दे मेरे राम सनेही, जा बिन दुख पावै मेरी देही।। टेक।।
हूँ तेरी पंथ निहारूँ स्वाँमी, कब रमि लहुगे अंतरजाँमी।।
जैसे जल बिन मीन, तलपै, ऐसे हरि बिन मेरा जियरा कलपै।।
निस दिन हरि विननींद न आवै, दरस पियासी राम क्यूँ सचु पावै।
कहै कवीर अव विलंब न कीजै, अपनौं जाँनि मोहि दरसन दीजै।। (224)

व्याख्या

कबीरदास कहते हैं कि मेरे प्रिय राम! मैं तुम्हें कब देखूँगा तुम्हारे दर्शन के बिना मेरा यह जीव बहुत दुखी है। हे स्वामी! मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। हे अन्तर्यामी प्रभु! तुम मुझे कब मिलोगे? जिस प्रकार पानी के बिना मछली तड़पती है वैसे ही तुम्हारे बिना मेरे प्राण तड़पते हैं। तुम्हारे बिना रात–दिन मुझे नींद नहीं आ रही है। दर्शन की प्यासी मेरी जीवात्मा को सुख कैसे प्राप्त होगा। कबीर कहते हैं कि हे प्रभु! अब विलंब न करो। अपना जानकर मुझे दर्शन दो।

विशेष

1. परमात्मा के प्रति जीवात्मा की गहरी आसक्ति और व्याकुलता संलक्ष्य है।
2. भाषा सरल, सहज व प्रवाहमयी सधुक्कड़ी बोली है।
3. तद्भव शब्दावली की प्रधानता है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. अनुप्रास व उदाहरण अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. राग आसावरी का प्रयोग हुआ है।

58. मैं सामने पीव गौं हनि आई।
साँई संगि साथ नहीं पूगी, गयो जोबन सुपिनाँ की नाँई।। टेक।।
पंच जना मिलि मंडप छायौ, तीन जनाँ मिलि लगन लिखाई।
सखी सहेली मंगल गावे, सुख दुख माथै हलद चढ़ाई।।

नाँना रंगै भाँवरि फेरी, गाँठि जोरि बावै पति ताई।
पूरि सुहाग भयो बिन दूलह, चौक कै रंगि धत्यो सगी भाई।।
अपने पुरिष मुख कबहूँ न देख्यौ, सती होत समझी समझाई।
कहै कबीर हूँ सर रचि मरिहूँ, तिरौ कंत ले तूर बजाई।।(226)

व्याख्या

कबीर की जीवात्मा कहती है कि मैं अपने प्रिय के साथ ससुर के घर आयी, परन्तु स्वामी के साथ इच्छाएँ पूरी नहीं हुईं। स्वप्न की भाँति यौवन बीत गया। पाँच लोगों (पाँच सत्त्व–क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर) ने मण्डप (शरीर) छापा। तीन लोकों (त्रयगुण–सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण) ने लगन लिखा। सखी–सहेली (वासनाएँ) सुख–दुःख की हल्दी माथे पर लगाकर मंगल गान कर रही हैं। नाना रंगों वाली भाँवर हो रही हैं। गाँठ जोड़कर के पिता ने (अविधा माया से ही) विवाह कर दिया।

बिना दूल्हे के सुहाग का कार्य पूरा हो गया। चौक के रंग में ही भाई के संग चल पड़ी। अपने पति का मुख कभी नहीं देखा। सती होने के समय समझ (गुरु) ने समझाया।

कबीर की जीवात्मा कहती है कि मैं चिता बनाकर मरूँगी। तुरही की ध्वनि के साथ, पति के साथ सती होकर तर जाऊँगी। अर्थात् हमारी आत्मा को मुक्ति मिल जायेगी।

विशेष

1. इस पद में विवाह का प्रतीक प्रस्तुत करके आत्मा और परमात्मा के संयोग का दृश्य प्रस्तुत किया गया है।
2. भाषा सरल, सहज व प्रवाहमयी सधुक्कड़ी बोली है।
3. तद्भव शब्दावली की प्रधानता है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. विभावना, श्लेष और रूपकातिशयोक्ति अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. राग आसावरी का प्रयोग हुआ है।

59. मन के मैलो बाहरि ऊजली किसी रे,
खाँडे की धार जन कौ धरम इसी रे।। टेक।।
हिरदा को बिलाव नैन बगध्यानी,
ऐसी भगति न होई रे प्रानी।।
कपट की भगति करै जिन कोई,
अंत की बेर बहुत दुख होई।।
छाँडि कपट भजी राम राई,
कहै कबीर तिहँ लेक बड़ाई।। (233)

व्याख्या

कबीरदास कहते हैं कि मन से मैला और बाहर से उजला किस काम का? साधक–भक्त का धर्म तलवार पर चलने के समान है जो हृदय से बिलाव हो, मन से ध्यानी बगुला हो, इसी प्रकार से भक्ति नहीं हो सकती है। अर्थात् भोग–वासना पर ध्यान केन्द्रित करने से भक्ति नहीं हो सकती है।

किसी भी भक्त को कपट की भक्ति नहीं करनी चाहिए, क्योंकि ऐसी भक्ति से अन्तकाल में बहुत कष्ट होता है। कपट को छोड़कर राजा राम की भजो। कबीर कहते हैं कि इससे तीनों लोकों में प्रशंसा होगी।

विशेष

1. भक्ति के स्वरूप का निरूपण किया गया है।
2. भाषा सरल, सहज व प्रवाहमयी सधुक्कड़ी बोली है।
3. तद्भव शब्दावली की प्रधानता है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. अनुप्रास, रूपक आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

60. चोखौ वनज व्यौपार, आइनै दिसावरि रे राम जपि लाही लीजै।।टेक।।
जब लग देखौ हाट परारा,
उठि मन बणियों रे, करि ले वणज सवारा।
बेगे ही तुम्ह लाद लदान,
औघट घआ रे चलनाँ दूरि पयाँनाँ।।
खरा न खोटा नाँ परखाना,
लाहे कारनि रे सव मूल हिरॉन ।।
सकल दुनी मैं लोभ पियारा,
मूल ज राखै रे सोई वनिजारा।।
देख भला परिलोक विरांना,
जन दोइ चारि नरे पूछौ साथ सयाँनौं।।
सायर तीन न वार न पारा,
कहि समझावै रे कबीर वणिजारा।। (234)

व्याख्या

कबीर जीव को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे जीव! अच्छा वणिज–व्यापार कर लो। देशान्तर में आये हो तो

राम को जप कर लाभ ले लो।

हे मन बनिया! जब तक बाजार का प्रसार देखते हो, उठकर शीघ्र ही वाणिज कर लो। जल्दी ही तुम सामान लाद लो। औघट घाट पर दूर प्रयाण करना है। खारे और खोटे की तुम्हें परख नहीं है। लाभ के लोभ में तुमने मूल को गँवा दिया है। समस्त दुनिया में लोगों को लोभ, लाभ ही प्यारा है, लेकिन जो मूल को सुरक्षित रखता है वही व्यापारी है। अपना देश अच्छा है। दूसरा देश दूसरा ही है। दो–चार साधुओं से पूछकर क्यों नहीं देखते हो? हे जीव! तुम सागर के किनारे खड़े हो जिसका कोई ओर–छोर नहीं है, कबीर यह व्यापारी को समझा कर कहता है।

विशेष

1. कवि ने साधक को समय नष्ट न करते हुए शीघ्र ही ईश्वर भक्ति कर लेने का उपदेश दिया है।
2. भाषा सरल, सहज व प्रवाहमयी सधुक्कड़ी बोली है।
3. तद्‌भव शब्दावली की प्रधानता है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. अनुप्रास व रूपक अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

61. जौं मैं ग्याँन विचार न पाया, तो मैं यों ही जनम गँवाया।। टेक ।।यह संसार हाट करि जानें, सबको बणिजण आया।

चेति सकै सो चेती रे भाई, मूरिख मूल गँवाया।।

थाके नैंन बैंन भी थाकै, थाकी सुंदर काया।

जाँमण मरण ए द्वै थाकै, एक न थाकी माया।

चेति–चेति मेरे मन चंचल, जब लग घट मैं सासा।

भगति जाव परभाव न जइयौ, हरि क चरन निवासा।।

जे जन जाँनि जमैं जग जीवन, तिनका ग्याँन नासा।

कहै कबीर वे कबहूँ न हारें, जाँने न ढारे पासा।। (235)

व्याख्या

कबीरदास जी कहते हैं कि यदि मुझे ज्ञान का विचार नहीं मिला, तो व्यर्थ में ही जन्म नष्ट हो गया है। वस्तुतः इस संसार को बाजार जानना चाहिए, यहाँ सभी लोग व्यापार के लिए आये हैं। हे भाई! हो सके तो सावधान हो जाओ। मूर्ख लोग यहाँ मूल (पूँजी) को भी गँवा डालते हैं। नेत्र थक गये हैं, वचन भी थक गये हैं, सुन्दर शरीर भी थक गया है। जन्म और मृत्यु भी थक गये हैं, लेकिन माया नहीं थकी है। अतः हे मेरे पपल मन! सावधान हो जाओ। जब तक शरीर में श्वास है, तब तक शक्ति भले ही चले जाये, लेकिन परमात्मा के चरणों में निवास का भाव नहीं जाना चाहिए। जो व्यक्ति यह समझकर परमात्मा के नाम का जप करते हैं, उनका ज्ञान नष्ट नहीं होता है। कबीर कहते हैं कि जो जानकर गलत पासा (गोटी) नहीं डालते हैं, वे कभी नहीं हारते हैं।

विशेष

1. इस पद में व्यक्ति को विषयों के आकर्षण से सावधान किया गया है।
2. भाषा सरल, सहज व प्रवाहमयी सधुक्कड़ी बोली है।
3. तद्भव शब्दावली की प्रधानता है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. अनुप्रास, पदमैत्री, व रूपक अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. राग आसावरी का प्रयोग हुआ है।

62. कहु पाँडे सूचि कंवन ठाँव, जिहि घरि भोजन बैठि खाऊँ।। टेक।।
माता जूठा पिता पुनि जूठा जूठे फल चित लागे।
जूठ आँवन जूठा जाँना, चेतहु क्यूँ न अभागे।।
अन्न जूठा पाँनी पुनि जूठा, जूठे बैठि पकाया।
जूठी कड़छी अन्न परोस्या, जूठे जूठा खाया।।
चौका जूठा गोबर जूठा, जूठी का ढोकारा।
कहै कबीर तेई जन सूचे, जे हरि भजि तजहिं बिकारा।। (251)

व्याख्या

हे पंडित! बताओ। पवित्रता किस स्थान पर है। वहीं बैठकर मैं भोजन करूँ। माता झूठी (अशली है, फिर पिता झूठा है। झूठ में झूठे का फल लगता है। आना झूठा है, जाना झूठा है। हे अभागे! तू सावधान, क्यों नहीं होता है? अन्न जूठा है, पानी झूठा है। बैठकर के झूठा ही पकाया जाता है। झूठी कड़छी से अन्न परोसा गया। झूठे ने झूठा खाया। चौका (भोजन करने का स्थान) झूठा है, गोबर झूठा है। कबीर कहते हैं कि जो लोग परमात्मा की उपासना करके विकार को तज देते हैं, वे ही व्यक्ति पवित्र हैं।

विशेष

1. इस पद में पवित्रता को परिभाषित किया गया है और बताया गया है कि असली पवित्रता आन्तरिक होती है।
2. भाषा सरल, सहज व प्रवाहमयी सधुक्कड़ी बोली है।
3. तद्भव शब्दावली की प्रधानता है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. अनुप्रास, प्रश्न व वक्रोक्ति अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

63. खालिक हरि कहीं दर हाल।
पंजर जसि करद दुसमन मुरद करि पैमाल ।। टेक।।
भिसत हुसकाँ दोजगाँ दुंदर दराज दिवाल।
पहनाम परदा ईत आतम, जहर जंगम जाल ।।
हम रफत रहबरहु साँ, मैं खुर्दा सुमाँ बिसियार।
हम जिमीं असमाँन खालिक, गुद मुँसिकल कार।।
असमान म्यानैं लहँग दरिया, तहाँ गुसल करदा बूद।
करि फिकर रह सालक जसम, जहाँ स तहाँ मौजूद।।
हँम चु चूद खालिक, गरक हम तुम पेस।
कबीर पहन खुदाइ की, रह दिगर दावानेस।। (258)

व्याख्या

कबीरदास जी कहते हैं कि सृष्टिकर्ता परमात्मा सर्वत्र विद्यमान है। मनुष्य के लिए पाँचों इन्द्रियाँ दुश्मन जैसा कार्य करती हैं और परेशान करके मुर्दा बना देती हैं। स्वर्ग, सुन्दर परियाँ, नरक, कंजूस, धनी, उदार, टानी उत्पत्ति से पूर्व, पहले परदे में रहने वाली, अंग, जीव–जगत, साथ में गतिमान, पथ–निर्देशक, तुच्छ 'म' और विस्तृत 'तुम' धरती पर रहने वाले, तथा आकाश को निर्मित करने के कठिन काम आदि सभी परमात्मा से अस्तित्व में आए और परमात्मा द्वारा ही तैयार किये गये। आकाश के बीच विद्यमान तरंगयुक्त स्वर्ग नदी में वह नहाता है। अतः ध्यानपूर्वक साधना के पथ पर चलो। जिससे तुम भी वहाँ पहुँच सको जहाँ वह (परमात्मा) वर्तमान है। यह मानो कि हम बूँद (वीय) से पैदा हुए हैं और परमात्मा निबूँद (बिना बूंद के पैदा हुआ है) है। अर्थात् वह अजन्मा है। हमारे और तुम्हारे अस्तित्व का नाश निश्चित है। कबीरदास कहते हैं कि हे मनुष्य! तू परमात्मा की शरण में रह, क्योंकि वही एकमात्र पनाह का रास्ता है और कहीं तुम्हें पनाह नहीं मिल सकती है।

विशेष

1. परमात्मा के विषय में और उसकी सर्वत्र स्थिति के सन्दर्भ में इस पद में प्रकाश डाला गया है।
2. भाषा सरल, सहज व प्रवाहमयी सधुक्कड़ी बोली है।
3. फारसी शब्दावली की प्रधानता है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. अनुप्रास अलंकार का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. राग आसावरी का प्रयोग हुआ है।

राग सोरठि

64. इब न रहूँ माटी के घर मैं,
इब मैं जाइ रहूँ मिलि हरि में।। टेक।।
छिनहर घर अरु झिरहर टाटी, घन गरजत कपै मेरी छाती।।

दसवैं द्वारि लागि गई तारी, दूरि गवन आवन भयौ भारी।।

चहुँ दिसि बैठे चारि पहरिया, जागत मुसि गये मोर नगरिया।।

कहै कबीर सुनहु रे लोई, भाँनड़ घड़ण सँवारण सोई।।(273)

व्याख्या

कबीरदास जी कहते हैं कि अब मैं इस मिट्टी के घर (शरीर) में नहीं रहूँगा। अब मैं परमात्मा से मिलकर रहूँगा। मेरा घर नौ छेदों (नौ इन्द्रियाँ) वाला है और टाटी में भी छेद है। बादल के गर्जन से मेरी छाती काँपती है। यही नहीं दसवें द्वार (ब्रह्मरन्ध्र) पर ताला (ध्यान) लग गया है, मेरा दूर आना–जाना कठिन हो गया है। चारों दिशाओं में चार पहरेदार (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) बैठे हैं। उनके होते हुए भी मेरे नगर (शरीर) को चोर (काल) लूट कर ले गये हैं।

अतः कबीर कहते हैं कि हे लोगो! सुनो। भग्न करने वाला, रचने वाला और सँवारने वाला परमात्मा है।

विशेष

1. परमात्मा को सर्वशक्तिमान बताया गया है।
2. सरल, सहज व भावानुकूल सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है।
3. तद्भव शब्दावली की प्रधानता है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. अनुप्रास व रूपक अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. राग सोरठि का प्रयोग हुआ है।

65. जन की पीर हो राजा राम भल जाँने, कहूँ काहि को मान।। टेक ।।

नैन का दुःख बैन जाँने, बैन को दुख श्रवनाँ।।

प्यंड का दुख प्रान जानै, प्रान का दुख मरनाँ।।

आस का दुख प्यासा जाने, प्यास का दुख नीर।।

भगति का दुख राम जानें, कहै दास कबीर।। (286)

व्याख्या

कबीरदास जी कहते हैं कि अपने भक्त की पीड़ा को राजा राम अच्छी तरह से जानते हैं– यह कहने पर कौन मानेगा। परन्तु नेत्र का दुःख वाणी (जिहा) जानती है, वाणी (जिह्वा) का दुःख कान जानता है, शरीर का दुःख प्राण जानता है, प्राणों का दुःख मरण जानता है। आशा का दुःख प्यास जानती है, प्यास का दुःख जल जानता है। इसी प्रकार कबीरदास कहते हैं कि भक्त का दुःख राम जानते हैं।

विशेष

1. भगवान की भक्त–वत्सलता इस पद में द्रष्टव्य है।

2. सरल, सहज व भावानुकूल सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है।
3. तद्भव शब्दावली की प्रधानता है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. अनुप्रास, पदमैत्री, एकावली व मानवीकरण अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. राग सोरठि का प्रयोग हुआ है।

66. भाई रे सकहु त तनि बुनि लेहु रे, पी? राँमहि दोस न देहु रे।। टेक।।
करगहि एकै विनाँनी, ता भीतरि पंच पराँनीं।।
तामैं एक उदासी, तिहि तणि बुणि सबै बिनासी।।
ज तूं चौसठि वरिया धावा, नहीं होइ पंच तूं मिलावा।।
जे तैं पाँसै छसै ताँणी, सौ सुख तूं रह पराँणी।।
पहली तणियाँ ताणाँ पीछ बुणियाँ बाँणाँ ।।
तणि बुणि मुरतव कीन्हाँ, तब राम राइ पूरा दीन्हाँ।।
राछ भरत भइ संझा, तारूणीं त्रिया मन बंधा।।
कहै कबीर विचारा, अव छोछी नली हमारी।। (289)

व्याख्या

कबीरदास जी कहते हैं कि हे भाई! हो सके तो तन बुन लो अर्थात् शरीर रूपी वस्त्र बुन लो। बाद में (समय बीत जाने पर) राम को दोष न देना। करघा (शरीर) एक विज्ञान है। इसके भीतर पाँच प्राणी (चित्त. बद्धि, मन, अहंकार और जीवात्मा) हैं। इनमें एक अनासक्त रहता है। वही तन बुन करके सब विनष्ट करता रहता है। यदि तूम चौंसठ बागों (तीर्थ) में दौड़ोगे, तब भी तुम्हारा पंचेन्द्रियों से परिचय नहीं हो सकेगा। हे प्राणी! यदि तुम पाँच इन्द्रियों और छः चक्रों से इस शरीर रूपी वस्त्र को बुनोगे तो सुख से रहोगे। पहले तानो (इन्द्रियों को संयमित करो), फिर बुनो। तान–बुन करके जब यह शरीर रूपी वस्त्र तैयार हो जायेगा, तब राजा राम पूरा देंगे अर्थात् पूरी मजदूरी देंगे। हे प्राणी राछ करते–करते ही तुम्हारे जीवन की सन्ध्या हो गयी है। परन्तु तुम्हारा मन तरूणी स्त्री में आबद्ध रहा है।

कबीर विचार कर कहते हैं कि अब हमारी नली करघनी का एक यंत्र खाली है। अर्थात् नली में तागा नहीं है, अतः शरीर रूपी वस्त्र को नहीं बुनना पड़ेगा।

विशेष

1. इस पद में साधना की प्रक्रिया का निरूपण है।
2. सरल, सहज व भावानुकूल सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है।
3. तद्भव शब्दावली की प्रधानता है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. अनुप्रास, पदमैत्री व रूपक अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।

7. राग सोरठि का प्रयोग हुआ है।

67. सरबर तटि हंसणी तिसाई जुगति बिना हरि जल पिया न जाई।। टेक।।
पीया चाहे तो लै खग सारी, उड़ि न सकै दोऊ पर भारी।।
कुंभ लीये ठाढ़ी पनिहारी, गुण बिन नीर भरै कैसे नारी।।
कहै कबीर गुर एक बुधि बताई, सहज सुभाइ मिलै राम राई।। (298)

व्याख्या

कबीरदास कहते हैं कि सरोवर (सहस्रार चक्र) के किनारे हंसिनी (आत्मा) प्यासी है।युक्ति (साधना) बना हरि जल (भक्ति जल) पिया नहीं जा सकता है। यदि यह जल पीना चाहो तो पक्षी (कुण्डलिनी) को आक कर लो, क्योंकि दोनों पंखों (द्वैत भावना) से भरी होने के कारण यह उड़ नहीं सकती है। पनिहारी (कुण्डलिनी) लेकर खड़ी है। वह नारी (कुण्डलिनी) रस्सी (सुषुम्ना नाड़ी) के बिना जल कैसे भरे।

कबीरदास कहते है कि गुरु ने एक बुद्धि (ज्ञान) बताया जिससे राजा राम सहज–स्वाभाविक रूप से मिल गये।

विशेष

1. कबीरदास जी ने स्पष्ट किया है कि ईश्वर भक्त की सहज साधना से स्वतः ही प्राप्त हो जाते हैं
2. सरल, सहज व भावानुकूल सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है।
3. तद्भव शब्दावली की प्रधानता है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. अनुप्रास, विनोक्ति आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

राग केदारौ

68 मेरी अंपियां जानि सुजांन भई।
देवर भरम ससुर संग तजि करि, हरि पीव तहां गई।। टेक।।
बालपनै के करम हमारे काटे जानि दई।
बांह पकरि करि कृपा कीन्हीं, आप समीप लई।।
पानी की बूंद थे जिनि प्यंड साज्या, तासंगि अधिक करई।
दास कबीर पल प्रेम न घटई, दिन दिन प्रीति नई।।(304)

व्याख्या

कबीरदास जी कहते हैं कि आत्मा सुन्दरी कह रही है कि मेरी आँखें परमात्मा को जान कर सुजान (जिसका शान सुन्दर है) हो गयी हैं। देवर (भ्रम) और ससुर (अज्ञान) का साथ तज कर जहाँ पर मेरा प्रियतम (परमात्मा) था, मैं वहाँ चली गयी। बचपन के सारे कर्मों को उन्होंने (प्रभु ने) काट दिया और कृपा करके, हाथ पकड़कर अपने समीप

कर लिया। पानी की बूंद से जिसने शरीर की सृष्टि की, मुझे उसके संग की प्राप्ति हो गयी। कबीर कहते हैं कि पल–भर के लिए भी आत्मा का परमात्मा के प्रति प्रेम नहीं घटा और दिन–प्रतिदिन उसकी प्रीति नवीन होती गयी।

विशेष

1. आत्मा का परमात्मा के प्रति प्रेम द्रष्टव्य है।
2. भाषा सरल, सहज व प्रवाहमयी सधुक्कड़ी बोली है।
3. तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. अनुप्रास व पुनरुक्ति प्रकाश अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. वह छंद का प्रयोग हुआ है।
7. राग केदारौ का प्रयोग है।

69. वे दिन कब आवैगे माइ।
जा कारनि हम देह धरी है, मिलिबौ अंगि लगाइ।। टेक।।
हौं जाँनूं जे हिल मिलि खेलूँ, तन मन प्रॉन समाइ।
या काँमना करौ परपूरन, समरथ हौ राम राइ।।
मांहि उदासी साधौ चाहे, चितवन रैनि बिहाइ।
सेज हमारी स्यंध भई है, जब सोऊँ तब खाइ।
यह अरदास दास की सुनिये, तन को तपति बुझाइ।।
कहै कबीर मिले जे साँई, मिलि करि मंगल गाइ।। (306)

व्याख्या

कबीरदास जी कहते हैं कि वियोगिनी आत्मा कह रही है कि हे माँ! वे दिन कब आएंगे, जब मैं परमात्मा का आलिंगन करूँगी, जिसके लिए मैंने शरीर धारण किया है। मुझे लगता है कि मैं उनके साथ हिल–मिलकर 'खेल रही हूँ। उनमें मेरे तन–मन समा गये हैं। हे राजा राम! आप समर्थ हैं। मेरी यह कामना पूरी करो। – हे प्रभु! तुम मेरी ओर से अनासक्त–उदासीन हो। तुम्हारी प्रतीक्षा में मेरी रात बीतती है। मेरी शय्या सिंह समान हो गयी है। जब सोती हूँ तभी खाने लगती है। कबीर कहते हैं कि अपने भक्त की यह विनती सुनो। शरीर की ज्वाला को शान्त करो। जब परमात्मा से मिलन होगा, तब मंगलगान होगा।

विशेष

1. वियोगिनी की व्यथा–वेदना और कामना एक साथ देखी जा सकती है।
2. भाषा सरल, सहज व प्रवाहमयी सधुक्कड़ी बोली है।
3. तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. अनुप्रास व पदमैत्री अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. राग केदारौ का प्रयोग है।

70. बाल्हा आव हमारे गेहु रे, तुम्ह बिन दुखिया देह रे।। टेक।।
सब को कहै तुम्हारी नारी, मोको इहै अदेह रे।
एकमेक है सेज न सोवै, तब लग कैसा नेह रे।।
आन न भावै नींद न आवै, ग्रिह बन धरै न धीर रे।।
ज्यूं कामी को काम पियारा, ज्यूं प्यारे कू नीर रे।।
है कोई ऐसा परउपगारी, हरि सूं कहै सुनाइ रे।।
ऐसे हाल कबीर भये हैं, बिन देखे जीव जाइ रे।। (307)

व्याख्या

कबीरदास जी कहते हैं कि वियोगिनी आत्मा परमात्मा रूपी प्रियतम से प्रार्थना कर रही है कि है हे बालम! हमारे घर आओ। तुम्हारे बिना मेरी देह दुखी है। सब लोग मुझे तुम्हारी नारी (पत्नी) कहते हैं. लेकिन मुझ इसमें अंदेशा (सन्देह) है। जब तक हिल–मिलकर तुम्हारे साथ शय्या पर न सोऊँ, तब तक कैसा प्यार। मुझे अन्न (भोजन) अच्छा नहीं लगता है, नींद नहीं आती है तथा घर और वन (बाहर) में धीरज नहीं बँधता है।

जिस प्रकार से कामी को काम (नारी) प्यारा होता है, प्यासे को पानी प्रिय होता है, ऐसे ही तुम मुझे प्यारे लगते हो। ऐसा क्या कोई परोपकारी है जो परमात्मा से मेरी व्यथा को सुना सके। कबीर कहते हैं कि मेरी हालत ऐसी हुई है कि प्रभु को बिना देखे मेरे प्राण निकले जा रहे हैं।

विशेष

1. विरहिणी आत्मा की व्याकुलता और व्यग्रता द्रष्टव्य है।
2. भाषा सरल, सहज व प्रवाहमयी सधुक्कड़ी बोली है।
3. तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. माधुर्य गुण का प्रयोग है।
5. अनुप्रास व उदाहरण अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. राग केदारौ का प्रयोग है।
8. भाव साम्य – तुलसीदास कहते हैं –

कामिहिं नारि पियारि जिमि, लोभिहिं प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर, प्रिय लागहु मोहिं राम।।

71. भगति. बिन भौजलि डूबत है रे।
बोहिथ छाड़ि वेसि करि डूबै, बहुतक दुख सहै रे।। टेक।।

बार बार जम पै डहकावै, हरि को है न रहे रे।।
चोरी के बालक की नाई, कासूं बाप कहे रे।।
नलिनि के सुवटा की नाई, जग सूं राचि रहे रे।
बंसा अपनि बंस कुल निकसै, आपहिं आप दहे रे।।
खेवट विनां कवन भौ तारै, कैसे पार गहे रे।
दास कबीर कहै समझावै, हरि की कथा जीवै रे।।
राम कौ नाँव अधिक रस मीठौं, बरंवार पीवै रे।।(310)

व्याख्या

कबीर कहते हैं कि मनुष्य भक्ति के बिना भवसागर में डूबता है। नौका (भक्ति) को छोड़कर और डूँडे टीले (विषय वासना) पर बैठकर वह बहुत दुःख सहता है। बार–बार यमराज के यहाँ दग्ध–पीड़ित है, लेकिन परमात्मा का बनकर नहीं रहता। जैसे दासी का बालक किसको अपना पिता कहे, भक्ति उसकी भी यही दशा है। वह भी नलिनी के तोते की भाँति संसार में अनुरक्त है। बाँस अपने वंश कुल त बाँस से भस्म होता है। केवट (प्रभु) बिना कौन उसे भवसागर से तरेगा और भवसागर से कैसे पार हो सकेगा। कबीरदास समझाकर कहते हैं कि परमात्मा की कथा ही जीवन प्रदान करेगी। राम नाम का रस बड़ा मा हे मनुष्य! इसे बार–बार पियो।

विशेष

1. भक्ति की अनिवार्यता का वर्णन किया गया है।
2. भाषा सरल, सहज व प्रवाहमयी सधुक्कड़ी बोली है।
3. तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. उदाहरण, रूपक और मानवीकरण अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. राग केदारौ का प्रयोग है।

72. चलत कत टेढौं टे ढौं रे।
नउँ दुवार नरक धरि मूंदे, तू दुरगंधि को बैढ़ो रे।।
जे जारे तौ होई भसमतन, तामे कहाँ भलाई।
सूक रस्वाँन काग को भखिन, रहित किरम जल खाई।।
फटे नैन हिरदै नाहीं सूझै, मति एकै नहीं जानी।
माया मोह ममिता सूं बांध्यो, बूडि मूवो बिन पाँनी।।
बारू के धरवा मैं बैठी, चेतत नहीं अयाँनाँ।
कहै कबीर एक राम भगति बिन, बूड़े बहत सयाना।। (311)

व्याख्या

कबीरदास जी कहते हैं कि हे मनुष्य! तू टेढ़ा–टेढ़ा क्यों चलता है? जिस देह पर तुझे अहंकार . है, वह शरीर नरक है। उस नरक को नौ द्वारों (दो आँख, दो नाक, दो कान, एक मुँह, गुदा मार्ग, मुत्र मार्ग) ने बंद कर रखा है। तू दुर्गन्ध का बाड़ा है। यदि तेरे इस शरीर को जलाया जाए तो भस्म हो जाता है। रहता है तो जल के कीड़े इसे खाते हैं। यह शूकर, श्वान और काग का भोजन है। भला इसमें कौन–सी अच्छाई है। तेरी आँखें फूटी हैं। तुझे ह्रदय में कुछ सूझता नहीं हैं। तेरी बुद्धि कुछ जानती नहीं हैं। माया, मोह, ममता . से तू आबद्ध है। तुझे बिना पानी के डूब मरना चाहिए। तू रेत के घर में बैठा हुआ है। हे अज्ञानी ! तू सावधान क्यों नहीं होता? कबीर कहते है कि रामभक्ति के बिना बहुत चतुर लोग डूब चुके हैं।

विशेष

1. निश्छल भाव से ईशोपासना करने की प्रेरणा दी गई है।
2. भाषा सरल, सहज व प्रवाहमयी सधुक्कड़ी बोली है।
3. तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।
5. अनुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश, विरोधाभास, रूपक व प्रश्न अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. राग केदारौ का प्रयोग हुआ है।

73. अरे परदेसी पीव पिछाँनि।

कहा भयौ तोकौं समझि न परई, लागी कैसी बांनि।। टेक।।

भोमि बिडाणी मैं कहा रातो, कहा कियो कहि मोहि।

लाहै कारनि मूल गमावै, समझावत हूं तोहि।।

निस दिन तोहि क्यूं नींद परत है, चितवत नाही तोहि।।

जम से बैरी सिर परि ठाढे, पर हथि कहां विकाइ।

झूठे परपंच मैं कहा लगी, ऊंठे नाँही चालि।।

कहे कबीर कछू बिलम न कीजै, कौने देखी काल्हि।। (312)

व्याख्या

कबीरदास जी कहते हैं कि परदेस में आई हुई आत्मा सुन्दरी! तू अपने प्रियतम को पहचान ले तुझे क्या हो गया है, समझ में नहीं आता है। तुम्हारी कैसी आदत हो गयी है? तू दूसरे की भूमि में क्यों अनुरक्त हो गयी है? मुझे बताओ कि तुमने यह क्यों किया? मैं तुम्हें समझा रहा हूँ कि तुमने लाभ के चक्कर में पूँजी को ही गँवा दिया तो रात–दिन तुम्हें नींद क्यों आती है। तुझे कुछ क्यों नहीं सूझता है। यमराज जैसे तेरे सिर पर खड़े हैं। तु दूसरे के हाथों में क्यों बिक रही है। झूठे प्रपंच में क्यों लगी है। उठकर क्यों नहीं चलती है।

कबीर कहते हैं कि हे परदेसी आत्मा, थोड़ा भी विलम्ब न कर, क्योंकि कल को किसने देखा है।

विशेष

1. जीवात्मा को सजग करने का प्रयास किया गया है।
2. सरल, सहज व प्रवाहमयी सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है।
3. शब्द चयन भावानुकूल व अभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. उपमा और रूपकातिशयोक्ति अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. राग रामकली का प्रयोग हुआ है।

74. भयौ रे मन पाहुँनड़ो दिन चारि।
आजिक काल्हिक मांहि चलौगो, ले किन हाथ सँवारि ।। टेक।।
सौंज पराई जिनि अपणावै, ऐसी सुणि किन लेह।
यहु संसार इसी रे प्राणी, जैसी धूँवरि मेह।
तन धन जीवन अंजुरी को पानी, जात न लागै बार।
सैवल के फूलन परि फूल्यो, गरव्यो कहाँ गँवार।।
खोटी खाटै खरा न लीया, कछू न जाँनी साटि।
कहै कबीर कछू बनिज न कीयौ, आयौ थी इहि हाटि।। (313)

व्याख्या

कबीरदास जी कहते हैं कि हे मन! तू इस संसार में चार दिन (अल्प समय) का अतिथि है। तम्हें आज–कल में जाना है। अतः तू हाथ को क्यों नहीं सँवार लेता है, तुझे दूसरे के सामान को नहीं अपनाना चाहिए–तूं ऐसी बात को क्यों नहीं सुनता है?

हे प्राणी! यह संसार धुएँ के बादल के समान है। शरीर और धन अँजुल का पानी है जिसे जाते नष्ट होते देर नहीं लगेगी। हे मूर्ख! सेंबल के फूलों पर क्यों अहंकार करते हो? तुम खोटी चीजों को छोड़कर सौदा क्यों नहीं करते हो, क्या व्यापार में तुम्हें कुछ भी ज्ञात नहीं है।

कबीर कहते हैं इस बाजार (संसार) में आकर भी कुछ वणिज नहीं किया।

विशेष

1. इस पद में संसार और शरीर की क्षणिकता का वर्णन किया गया है।
2. सरल, सहज व प्रवाहमयी सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है।
3. शब्द चयन भावानुकूल व अभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास व उपमा अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।

7. राग केदारौ का प्रयोग हुआ है।

75. राम बिनां संसार धंध कुहेरा,
सिरि प्रगट्या जम का फेरा।। टेक।।
देव पूजि पूजि हिंदू मूये, तुरूक मूये हज जाई।
जटा बांधि बांधि जोगी मूये, कापड़ी केदारौ पाया।।
कवि कवीवै कविता मूये, कापड़ी केदारौ जाई।
केस लूंचि लूंचि मूये बरतिया, इनमें किनहुँ न पाई।।
धन संचते राजा मूये अरु ले कंचन भारी।
बेद पढ़े पढ़े पंडित मूये, रूप भूले मूई नारी।
जे नर जोग जुगति करि जाँने, खोजै आप सरीरा।
तिन मुकति का संसा नाहीं, कहत जुलाह कबीरा।। (317)

व्याख्या

कबीरदास कहते हैं कि परमात्मा के बिना यह संसार धुंध कुहरा है। प्राणी के सिर पर यमराज का लगातार आना–जाना है। वे कहते हैं कि देवों का पूजन करते–करते हिन्दू मर गये। तुर्क हज जाकर मर गये, नष्ट हो गए। जटा को बाँध–बाँधकर योगी खत्म हो गये, लेकिन कोई भी मुक्ति नहीं प्राप्त कर सका। कवि कविता कहने में लगे हैं, कापड़ी केदारनाथ जाने में लगे हैं, जैनी साधु बालों को नोच–नोच कर मर रहे हैं, लेकिन इनमें से कोई भी ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सका है। धन और बहुत सारा सोना इकट्ठा करते–करते राजा मर गये, वेद शास्त्रों को पढ़–पढ़कर पंड़ित मरे, रूप गर्विता नारी मर गयी। परंतु जो मनुष्य योग–युक्ति को जानकर अपने शरीर में ही परमात्मा की खोज करते हैं, उनकी मुक्ति में संदेह नहीं है।

विशेष

1. 'जुलाहा' शब्द पर टिप्पणी करते हुए 'कबीर वाङ्मयः खण्ड 2' में लिखा गया है– "यहाँ पर जुलाहे' शब्द बहुत व्यंजक है। इसमें ध्वनि यह है कि कबीर यद्यपि तथाकथित निम्नकुल में उत्पन्न हुए हैं और उन्होंने वेदशास्त्र का अध्ययन नहीं किया है, किन्तु उन्होंने अपने अनुभव से जान लिया है कि मुक्ति उन्हीं को प्राप्त हो सकती है, जिनमें साधना द्वारा आन्तरिक परिवर्तन हो गया है।''
2. सरल, सहज व प्रवाहमयी सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है।
3. शब्द चयन भावानुकूल व अभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास, पुनरुक्ति प्रकाश, दृष्टांत व रूपक अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
9. राग केदारौ का प्रयोग हुआ है।

राग टोड़ी

76. तू पाक परमानंदे।
पीर पै कवर पनह तुम्हारी, मैं गरीब क्या गंदे ।। टेक।।
तुम्ह दरिया सबही दिल भीतरि, परमानंद पियारे।
नैक नजरि हम ऊपरि नाहि, क्या कमिबखत हमारै ।।
हिकमति करै हलाल बिचारे, आप कहाँवे मोटे।
चाकरी चोर निवाले हाजिर, सांई सेती खोटे।।
दाइम दवा करद बजावै, मैं क्या करूं भिखारी।
कहै कबीर मैं बंदा तेरा, खालिक पनह तुम्हारी।।(323)

व्याख्या

कबीरदास जी परमात्मा से आत्म निवेदन करते हुए कहते हैं कि हे परमात्मा! तू पवित्र और परमानन्द है। पीर और पैगम्बर तक तुम्हारी पनाह (शरण) में हैं। मुझ मलिन और गरीब की तो क्या हैसियत है । हे प्रिय परमानंद! तू सागर है और तू सबकी आत्मा में वर्तमान है। हमारे ऊपर तुम्हारी थोड़ी भी नजर नहीं है ? (तुम्हारी थोड़ी सी भी कृ पा नहीं है) यह हमारा कैसा दुर्भाग्य है कि जो चतुराई करते हैं, जो धर्मयुक्त विचार रखते हैं वे मोटे (प्रशंसनीय, वंदनीय) कहे जाते हैं। सेवा में चोरी करते हैं, खाने के वक्त हाजिर हो जाते हैं और स्वार (परमात्मा) से खोट करते हैं, वो प्रत्येक अवसर पर आशीष देते हैं। मैं भिखारी (अकिंचन) क्या करूँ? कबार कहते हैं कि हे परमात्मा! मैं तुम्हारा सेवक हूँ और शरणागत हूँ, तुम्हारी शरण में हूँ।

विशेष

1. इस पद में परमात्मा की प्रभुता का बखान किया गया है।
2. सरल, सहज व प्रवाहमयी सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है।
3. शब्द चयन भावानुकूल व अभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास अलंकार का प्रयोग है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. राग टोडी का प्रयोग हुआ है।

राग भैरूँ

77. है हजूरि क्या दूर बतावै, दुंदर बांधे सुंदर पावै ।। टेक।।
सो मुलनां जो मनसू लरै, अह निसि काल चक्र सूं भिरै।
काल चक्र का मरदै मान, तां मुलनां कू सदा सलाम।।
काजी सो जो काया बिचारै, अहनिसि ब्रह्म अगनि प्रजारै।

सुप्पनै बिंद न देई झरना, ता काजी कू जुरा न मरणां।।
सो सुलितान जु द्वै सुर ताने, बाहरि जाता भीतरि आनै।
गगन मंडल मैं लसकर करै, सो सुलितान छत्र सिरि धरै।।
जोगी गोरख गोरख करै, हिंदू राम नाम उच्चरै। .
मुसलमान कहै एक खुदाइ, कबीरा को स्वामी घटि घटि रह्यो समाइ।। (330)

व्याख्या

कबीरदास कहते हैं कि वह परमात्मा सामने है, उसे क्यों दूर बताते हो तो द्वन्द्व को नष्ट करने पर ही सुन्दर (परमात्मा) की प्राप्ति होगी। वह मुल्ला है जो मन से लड़ता है, रात–दिन कालचक्र से भिड़ता है। कालचक्र के मान का जो मर्दन करता है, उस मुल्ला को सदा सलाम है। काजी वह है जो माया में ही परमात्मा को मानता है। रात–दिन ब्रह्माग्नि को प्रज्वलित करता है। स्वप्न में भी वीर्य को झरने (स्खलित) नहीं देता है। वह काजी न वृद्ध होता है और न मरता है।

वह सुल्तान है जो सुरों (श्वासों) को तानता है। बाहर जाते श्वासों को भीतर लाता है, भीतर रोकता है। गगन मंडल (आकाश, सहस्रार चक्र) में लश्कर–सेना (शक्ति समूह) को इकट्ठा करता है। वही सुल्तान है जो सिर पर छत्र को धारण करता है। गोरखपंथी योगी 'गोरख–गोरख' करता है। हिन्दू राम नाम का उच्चारण करता है, मुसलमान कहता है कि परमात्मा (खुदा) एक है, लेकिन कबीर का स्वामी तो घट–घट में समाया हुआ है।

विशेष

1. परमात्मा को बाहर नहीं, शरीर के भीतर बताया गया है।
2. सरल, सहज व प्रवाहमयी सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है।
3. शब्द चयन भावानुकूल व अभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास व उल्लेख अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. राग भैरूँ का प्रयोग हुआ है।

78. राम निरंजन न्यारा रे, अंजन सकल पसारा रे।। टेक।।
अंजन उतपति वो उंकार, अंजन मांड्या सब बिस्तार।
अंजन ब्रह्मा शंकर ईद, अंजन गोपी संगि गोव्यंद।।
अंजन बाणी अंजन वेद, अंजन कीया नानां भेद।
अंजन विद्या पाठ पुरांन, अंजन फोकट कथाहिं गियांन ।।
अंजन पाती अंजन देव, अंजन की करै अंजन सेव।।
अंजन नाचौ अंजन गावै, अंजन भेष अनंत दिखावै।

अंजन कहौ कहां लग केता, दांन पुनि तप तीरथ जंता।।

कहै कबीर कोई बिरला जागै, अंजन छाडि निरंजन लागे।। (336)

व्याख्या

कबीरदास जी कहते हैं कि परमात्मा (राम) माया रहित और अकेला है। यह सारा फैलाव माया है। ओमकार की उत्पत्ति माया से हुई है। माया का ही सारा विस्तार है। माया ही ब्रह्मा, शंकर और इन्द्र है। कृष्ण के साथ गोपियों की माया है। वाणी माया है, वेद माया है। माया ने ही अनेक भेद कर रखे हैं। विद्या, पाठ, पुराण सब माया है। बेकार की कथा और ज्ञान भी माया है। माया पत्ती है। माया देव है। माया की माया ही उपासना करती है। माया ही नाचती है। माया ही गाती है और माया ही अनेक रूपों को दिखाती है। अंजन (माया) के बारे में कहाँ तक और कितना कहूँ। जितने दान, पुण्य, तप, तीर्थ हैं वे सब माया ही हैं। कबीर कहते हैं कि कोई विरल व्यक्ति ही जाग पाता है, जो माया (अंजन) को छोड़कर मायामुक्त परमात्मा(निरंजन) की सेवा में लगता है।

विशेष

1. बहुरूपीय माया का वर्णन इस पद में किया गया है।
2. सरल, सहज व प्रवाहमयी सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है।
3. शब्द चयन भावानुकूल व अभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।
5. अनुप्रास व उल्लेख अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।
7. राग भैरूँ का प्रयोग हुआ है।

79. अंजन अलप निरंजन सार, यहै चीन्हि नर करहुं विचार।। टेक।।

अंजन उतपति वरतनि लोई, बिना निरंजन मुक्ति न होई।

अंजन आवै अंजन जाइ, निरंजन सब घट रह्यो समाइ।

जोग ग्यांन तप सबै विकार, कहै कबीर मेरे राम अधार।। (337)

व्याख्या

कबीरदास कहते हैं कि माया अपूर्ण है और मायामुक्त परमात्मा पूर्ण तत्त्व है। हे मनुष्य! इस सत्य को जानकर विचार करो। उत्पत्ति माया है, लोगों का व्यवहार–बर्ताव माया है. परंतु निरंजन की उपासना के बिना मुक्ति नहीं हो सकती है। माया ही आती है और माया ही जाती है, लेकिन निरंजन सारे घट में समाहित हैं।

कबीर कहते हैं कि योग, ध्यान, तप आदि सब विकार हैं। राम ही मेरे एकमात्र आधार हैं।

विशेष

1. माया की अपूर्णता और परमात्मा के विस्तार का निरूपण किया गया है।
2. सरल, सहज व प्रवाहमयी सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है।
3. शब्द चयन भावानुकूल व अभिव्यक्ति में सहायक है।

4. प्रसाद गुण सर्वत्र विद्यमान है।

5. अनुप्रास अलंकार का प्रयोग हुआ है।

6. पद छंद का प्रयोग हुआ है।

7. राग भैरूँ का प्रयोग हुआ है।

80. एक निरंजन अलह मेरा, हिंदु तुरक दहू नहीं नेरा।। टेक।।101।।
राखू व्रत न मरहम जानां, जिसही सुमिरूं जो रहै निदांनां।
पूजा करूं न निमाज गुजारू, एक निराकार हिरदै नमस्कारूँ।।
नां हज जाउं न तीरथ पूजा, एक पिछांणा तौ का दूजा।
कहै कबीर भरम सव भागा, एक निरंजन सूं मन लागा।। (338)

व्याख्या

कबीरदास कहते हैं कि मेरा अल्लाह (परमात्मा) अकेला है और वह निरंजन है। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही उसके समीप नहीं हैं। न तो मैं व्रत रखता हूँ और न रमजान (मुहर्रम) में रोजा रखकर उसे ही स्मरण ही करता हूँ। मैं तो उसका स्मरण करता हूँ, जो सदा वर्तमान रहता है। न मैं पूजा करता हूँ और न नमाज अदा करता हूँ। अकेले निर्गुण निराकार ब्रह्म को ही हृदय से नमस्कार करता हूँ। न हज जाता हूँ, न तीर्थ जाता हूँ और न ही पूजा करता हूँ। चूँकि मैंने एक को पहचान लिया है, फिर दूसरे में क्या रखा है? अंत में वे कहते हैं कि मेरे सारे भ्रम भंग हो गये हैं और निरंजन परमात्मा से मन लग गया है।

विशेष

1. इस पद में बाह्याचारों का विरोध किया गया है और निर्गुण–निराकार–निरंजन परमात्मा की उपासना का संदेश दिया गया है।

2. यह भी स्पष्ट किया गया है कि कबीर का ब्रह्म हिन्दुओं के भगवान् और मुसलमानों के अल्लाह से ऊपर है।

3. भाषा सरल, सहज व प्रवाहमयी सधुक्कड़ी बोली है।

4. तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

5. प्रसाद गुण सर्वत्र व्याप्त है।

6. अनुप्रास अलंकार का प्रयोग है।

7. पद छंद का प्रयोग हुआ है।

8. राग भैरूँ का प्रयोग हुआ है।

81. भलै नीदौ भलै नींदौ भले नीदौ लोग, तनौ मन राम पियारे जोग।। टेक।।
मैं बौरी मेरे राम भरतार, ता कारंनि रचि करौ स्यगार।
जैसे धुबिया रज मल धोवै, हर तप रत सब निंदक खोवै।।
न्यंदक मेरे माई बाप, जन्म जन्म के काटे पाप।

न्यंदक मेरे प्रान अधार, बिन बेगारी चलावै भार।।

कहै कबीर न्यदक बलिहारी, आप रहै जन पार उतारी।। (342)

व्याख्या

आत्मा रूपी विरहिणी कहती है कि निन्दा करने वाले लोग अच्छे हैं। मेरा तन–मन प्रियतम राम में अनुरक्त है। मैं पागल हूँ। राम मेरे पति हैं। उनके लिए मैंने श्रृंगार किया है। जिस प्रकार से धोबी धूल और मन को धोता है, परमात्मा की तपस्या में रत व्यक्ति अपने निन्दकों को खो देता है। उसी प्रकार निन्दकों ने मेरे सारे अवगुणों को समाप्त कर दिया है।

निंदक मेरे माता–पिता हैं। उन्होंने मेरे जन्म–जन्म के पापों को नष्ट कर दिया। निन्दक मेरे प्राणाधार है क्योंकि बिना कुछ पाये बेकार में भार ढोते हैं। कबीर कहते हैं कि मैं निन्दक पर बलिहारी हूँ। आप तो भवसागर में रहते हैं और लोगों को जिनकी वे निन्दा करते हैं उन्हें भवसागर से पार उतार देते हैं।

विशेष

1. निन्दक व्यक्ति की विशेषता को निरूपित किया गया है।
2. यह भी स्पष्ट किया गया है कि कबीर का ब्रह्म हिन्दुओं के भगवान् और मुसलमानों के अल्लाह से ऊपर है।
3. भाषा सरल, सहज व प्रवाहमयी सधुक्कड़ी बोली है।
4. तद्‌भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
5. अनुप्रास, उदाहरण, उल्लेख, विभावना, पुनरुक्ति प्रकाश तथा रूपक अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. अनुप्रास अलंकार का प्रयोग है।
7. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

82. ताथे कहिये लोकोचार, वेद कते व कथें म्योहार।। टेक।।

जारि वारि करि आव देहा, मूयां पीछे प्रीति सनेहा ।

जीवन पित्रहि भारहि डंगा, मूंयां पिन से पालें गंगा।।

जीवत पित्र अन न स्वाथ, मूंगा पीछे व्यंड भरावे।।

जीवत पित्र कू बोले अपराध, मूंबां पीछे देहि सराय।।

कहि कबीर मोहि अचिरज आवै, कउवा खाइ पित्र क्यूं पावै।।(356)

व्याख्या

कबीरदास जी कहते हैं कि वेद–कुरान व्यवहार की बातें कहते हैं, इसलिए मैं (कबीर) इनके लोकाचार कहता हूँ। लोग जीते जी अपने पितरों से प्रेम नहीं करते परंतु मृत शरीर को जला कर आते हैं। मरने के बाद इस शरीर से प्रीति–स्नेह व्यर्थ है। जीते जी पितर को डंडा मारते हैं और मरने के बाद उसे गंगा में डालते हैं। जीते जी पितर को भोजन नहीं देते हैं और मरने के बाद पिण्ड दान करते हैं। जीते जी पितर को अपराधी बताते हैं और मरने के बाद श्राद्ध करते हैं। अतः, कबीर कहते हैं कि मुझे आश्चर्य होता है कि जो अन्न जो कौआ खाता है, यह पितर को कैसे प्राप्त हो सकता है?

विशेष

1. कर्मकाण्ड का निषेध किया गया है।
2. सरल, सहज व धाराप्रवाह सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है।
3. शब्द चयन भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण का प्रयोग है।
5. अनुप्रास पदमैत्री व उल्लेख आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग है।
7. राग भैरूँ का प्रयोग है।

83. काहे कू बनाऊँ परिहै टाटी,
का जानूं कहाँ परिहै माटी।। टेक।।
काहे कूमंदिर महल चिणांऊँ, मुवां पीछे घड़ी एक रहण न पाऊँ।।
कहो कू छाऊँ ऊँच ऊंचेरा, साढ़े तीनि हाथ घर मेरा।।
कहै कबीर नर गरब न कीजै, जेता जन तेती भुंइ लीजै।। (361) .

व्याख्या

कबीरदास जीवन की नश्वरता को ध्यान में रखकर कहते हैं कि किसलिए भीति (दीवार) बनाऊँ और किसलिए टाटी लगाऊँ। क्या पता इस शरीर की मिट्टी कहाँ पड़ेगी।

मैं किसलिए मन्दिर–महल बनाऊँ। मरने के बाद एक घड़ी भी रहने को नहीं मिलेगी। ऊँची–ऊँची छतें क्यों छाऊँ। यह घर (शरीर) तो साढ़े तीन हाथ का है। अतः, कबीर कहते हैं कि हे मनुष्य! अहंकार न करो। जितना शरीर है, उतनी ही भूमि लो।

विशेष

1. शरीर की नश्वरता की व्यंजना की गयी है।
2. सरल, सहज व धाराप्रवाह सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है।
3. शब्द चयन भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण का प्रयोग है।
5. अनुप्रास अलंकार का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग है।
7. संबोधन शैली का प्रयोग हुआ है।

84. मन बनजारा जागि न सोई लाहे कारनि मूल न खोई।। टेक।।
लाहा देखि कहा गरवांना, गरव न कीजै मूरखि अयांनां।
जिन धन संच्या सो पछितांनां, साथी चलि गये हम भी जाना ।।

निसि अंधियारी जागहु बंदे, छिटकन लागे सबही संधे।
किसका बंधू किसकी जोई, चल्या अकेला संगि न कोई।
ढरि गए मंदिर टूटे वंसा, सूके सरवर उड़ि गये हंसा।
पंच पदारथ भरिहै खेहा, जरि बरि जायगी कंचन देहा।।
कहत कबीर सुनहु रे लोई, राम नाम बिन और न कोई।। (367)

व्याख्या

हे मन रूपी बनजारे! तू जाग,जा। सो मत। लाभ के कारण पूँजी (मूलधन) को न गँवा। लाभ को देखकर क्यों गर्व कर रहा है? हे अज्ञानी मूर्ख! गर्व न करो।

जिसने धन संग्रह किया, उसको पछताना पड़ा है। साथी चले गये हैं. हमें भी जाना होगा। अंधेरी रात है। हे मनुष्य! जाग जा। सारी संधियाँ (सम्बन्ध) बिखरने लगी हैं। कौन किसका भाई है? कौन किसकी स्त्री है? प्राणी को अकेला जाना होता है। कोई साथ में नहीं जाता है।

मंदिर ढह गया। वंश टूट गये। सरोवर सूख गया। हंस उड़ गये। पाँचों पदार्थ (काम, क्रोध, लोभ, मोह,पल भरेंगे और स्वर्णिम शरीर भस्म हो जायेगा। कबीर कहते हैं कि हे लोगो! सुनो। राम नाम के बिना और कोई नहीं रहेगा।

विशेष

1. सांसारिक नश्वरता का वर्णन इस पद में किया गया है।
2. सरल, सहज व धाराप्रवाह सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है।
3. शब्द चयन भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण का प्रयोग है।
5. अनप्रास, रूपक, प्रश्न आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग है।
7. संबोधन शैली का प्रयोग हुआ है।

85. एक सुहागनि जगत पियारी, सकल जीव जंत की नारी।। टेक।।
खसम करै वा नारि न रोवै, उस रखवाला औरे होवै।
रखवाले का होइ बिनास, उतहि नरक इत भोग बिलास।।
सूहागनि गलि सोहे हार, संतनि बिख बिलसै संसार ।
पीहे लागी फिरै पचि हारी, संत की ठठकी फिरै विचारी।।
संत भजै वा पाछी पडै, गुर के सबदूं मार्‍यौ डरै।
साषत कै यह प्यंड पराइनि, हमारी द्रिष्टि परै जैसे डाँइनि।।
अब हम इसका पाया भेद, होइ कृपाल मिले गुरदेव ।।
कहै कबीर इव बाहरि परी, संसारी के अचलि टिरी।। (370)

व्याख्या

कबीरदास कहते हैं कि सुहागिन (माया) एक है और वह संसार की प्रेमिका है। वह सारे जीव–जन्तुओं की नारी है। पति (जीव) के मर जाने पर वह स्त्री (माया) रोती नहीं है, क्योंकि उसका रक्षक कोई और हो जाता है। रक्षक का नाश होता है। वहाँ (मरने के बाद) वह नरक में जाता है और यहाँ (संसार में) भोग–विलास करता है।

सुहागिन (माया) के गले में हार (वासना का हार) है। संतों के लिए यह हार विष के समान है और संसार उसके साथ विलास करता है। यह परिश्रमी माया सबके पीछे फिरती रहती है। बेचारी संतों के कारण ठिठक जाती है। संत उससे भागते हैं, लेकिन वह पीछे पड़ी रहती है। गुरु के शब्दों की मार से वह डरती है। शाक्तों के पिंड के पीछे पड़ी रहती है। हमारी दृष्टि में यह डाइन के समान है। अब हमने इसका रहस्य पा लिया है। कृपालु होकर गुरुदेव मुझे मिल गये हैं।

कबीर कहते हैं कि अब यह बाहर पड़ी है, केवल संसारी लोगों के यहाँ अचल टिकी है।

विशेष

1. इस पद में माया के विनाशकारी रूप का वर्णन किया गया है।
2. सरल, सहज व धाराप्रवाह सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है।
3. शब्द चयन भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण का प्रयोग है।
5. विरोधाभास और रूपकातिशयोक्ति अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग है।
7. संबोधन शैली का प्रयोग हुआ है।

86. परोसनि मांगै कत हमारा, पीव क्यूं बौरी मिलहि उधारा।। टेक।।
मासा मांगै रती न देऊ, घटे मेरा प्रेम तो कासनि लेऊ।
राखि परोसनि लरिका मोरा, जे कछु पाउं सू आधा तोरा।
... बन बन ढूँढ़ौ नैन भरि जोऊँ, पीव न मिलै तौ बिलखि करि रोऊं।
कहै कबीर यहु सहज हमारा, बिरली सुहागनि कंत पियारा।।(371)

व्याख्या

कबीरदास कहते हैं कि जीवात्मा कह रही है कि पड़ोसिन (अन्य सांसारिक जीव) हमारा कंत (परमात्मा) मांग रही है। हे पागल! क्या प्रियतम भी उधार मिलता है? कहने का तात्पर्य यह है कि जीवात्मा का हृदय अनुभूतिगम्य है। वह कथन का विषय नहीं है अतः उसे बाँटा नहीं जा सकता है, प्रेषित नहीं किया जा सकता है।

जीवात्मा कहती है कि मैं तो पड़ोसिन के मासा (एक तोला) भर माँगने पर रत्ती–भर भी नहीं दूँगी। यदि मेरा प्रेम घट जायेगा तो मैं फिर किससे लूँगी? हे पड़ोसिन! तू मेरे लड़के (साधनाफल भक्ति) को रख। इसमें जो कुछ प्राप्त होगा वह आधा तेरा होगा। मैं प्रियतम को वन–वन ढूँढ़ती हूँ। नैनों से प्रतीक्षा करती हूँ। जब प्रियतम नहीं मिलता है तब बिलख कर रोती हूँ। कबीर कहते हैं कि यह हमारे लिए सहज है। वियोगिनी सुहागिन को कंत ही प्यारा होता है।

विशेष

1. इस पद में जीवात्मा को सुहागिन और परमात्मा को कंत के रूप में प्रस्तुत किया गया है।
2. सरल, सहज व धाराप्रवाह सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है।
3. शब्द चयन भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण का प्रयोग है।
5. वक्रोक्ति और गूढोक्ति अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग है।
7. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग हुआ है।

राग बसंत

87. सो जोगी जाकै सहज भाइ, अकल प्रीति की भीख खाइ ।। टेक ।।
सबद अनाहद सींगी नाद, काम क्रोध विषया न बाद।
मन मुद्रा जाकै गुर को ग्यांन, त्रिकुट कोट मैं धरत ध्यान।।
मनहीं करन को करै सनांन, गुरको सबद ले ले धरै धियांन।
काया कासी खोजै वास, तहां जोति सरूप भयौ परकास।।
ग्यांन मेषली सहज भाइ, बंक नालि को रस खाइ।
जोग मूल को देइ बंद, कहि कबीर धीर होइ कंद।। (377)

व्याख्या

कबीरदास कहते हैं कि वही योगी है जिसके भाव सहज हैं और जो पूर्ण परमात्मा के प्रेम की भीख को खाता है। जो अनहद नाद और शृंगीनाद को सुनता है। काम, क्रोध और विषयों में वाद–विवाद नहीं करता है अर्थात् उसमें नहीं फंसता है। गुरु का ज्ञान ही जिसके मन की मुद्रा है और जो त्रिकुटी के दुर्ग में ध्यान लगाता है। जो मन में स्नान करता है और गुरु शब्द को ग्रहण करके ध्यान लगाता है जो काया की काशी में स्थान खोजता है। जो ज्योति स्वरूप परमात्मा के प्रकाश को सहज भाव से ज्ञान की मेखला धारण करता बंकमणि से बहने वाले अमृत रस का पान करता है। जो योग के मूलाधार चक्र को बाँध देता है। कबीर कि जो विषयों के प्रति मंद होकर स्थिर हो जाता है, वही सच्चा योगी है।

विशेष

1. योग साधक की विशेषताओं को निरूपित किया गया है।
2. सहज, सरल, सहज व धाराप्रवाह सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है।
3. शब्द चयन भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण का प्रयोग है।
5. अनप्रास व रूपक अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग है।

7. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग है।

88. मेरौं हार हिरांनौ मैं लजाऊँ, सास दुरासनि पीव डराऊँ।। टेक।।
हार गुह्यौ मेरी राम ताग, विचि बिचि मान्यक एक लाग।।
रतन प्रवालै परंम जोति, ता अंतरि लागे मोति।।
पंच सखी मिलिहै सुजांन, चलहु त जइये त्रिवेणी न्हान।
न्हाइ धोइ के तिलक दीन्ह, नां जानू हार किनहूं लीन्ह।।
हार हिरांनी जन विमल कीन्ह, मेरौ आहि परोसनि हार लीन्ह।
तीनि लोक की जानै पीर, सब देव सिरोमनि कहै कबीर।। (378)

व्याख्या

जीवात्मा रूपी प्रियतमा कह रही है कि मेरा हार (ज्ञान) खो गया है, इसलिए मुझे लज्जा आती है। सास (चेतना) कठोर है और प्रियतम (परमात्मा) से डरती हूँ। मेरा हार राम नाम के धागे से गुँथा है। बीच–बीच में माणिक्य (साधना), परम ज्योति का मूंगा और रत्न लगा हुआ है। उसके मध्य में ज्योति (परम प्रकाश) है। पाँच चतुर सखियाँ (पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ) मिलेंगी। वे त्रिवेणी स्नान करेंगी। नहा–धोकर तिलक लगाया। पता नहीं किसने हार ले लिया। हार खो जाने से भक्त दुखी हो गया। मेरे हार को पड़ोसिन ने ले लिया।

कबीर कहते हैं कि सब देवों के शिरोमणि भगवान तीनों लोकों की पीड़ा को जानते हैं।

विशेष

1. इस पद में बताया गया है कि ईश्वर ज्ञान के लोप से जीवात्मा रूपी प्रियतमा परमात्मा रूपी प्रियतम के पास जाने में संकोच करती है।
2. सरल, सहज व धाराप्रवाह सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है।
3. शब्द चयन भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण का प्रयोग है।
5. रूपक तथा रूपकातिशयोक्ति अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग है।
7. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग है।
8. जायसी ने भी 'मानसरोदक खण्ड' में ऐसा ही वर्णन किया है।

89. मेरे जैसे बनिज सौ कंवन काज, मूल घटै सिरि बधै ब्याज ।।टेक।।
नाइक एक बनिजारे पांच, बैल पचीस की संग साथ।
नव बहियां दस गौनि आहि, कसनि बहत्तरि लागै ताहि।।
सात सूत मिलि बनिज कीन्ह, कर्म पयादौ संग लीन्ह ।।

तीन जगति करत रारि, चल्यो है बनिज वा बनज झारि।।
बनिज खुटानी पूंजी टूटि, षाडू दह दिसि गयौ फूटि ।।
कहै कबीर यहु जन्म बाद, सहजि समानूं रही लादि।। (383)

व्याख्या

कबीरदास जी कहते हैं कि इस प्रकार के वाणिज्य से मुझे क्या काम? जिसमें पूँजी तो घटता। रहे और सिर पर ब्याज बढ़ता रहे। नायक एक है और व्यापारी पाँच हैं। इनका पच्चीस बैलों का साथ है। नौ बहियाँ दस बोरे हैं तथा उसमें बहत्तर बंधन लगे हैं। इनके सात पुत्रों ने मिलकर वाणिज्य किया है। कर्म रूपी पयादे (सिपाही) साथ में है। तीन कर्मचारी झगड़ा करते हैं। परिणामतः वह वाणिज्य छोड़कर चल पड़ता है। वाणिज्य पूरा हुआ, पूँजी टूट गयी (नष्ट हो गयी) षाडू (पात्र) दसों दिशाओं से फूट गया।

कबीर कहते हैं कि यह जन्म बरबाद हो गया। सहज साधना में समा गया और बोझा नष्ट हो गया।

विशेष

1. इस पद में संख्यावाचक प्रतीकों का प्रयोग किया गया है। डॉ. युगेश्वर ने इनको इस प्रकार स्पष्ट किया है

   नाइक–नायक, जीवात्मा।

   बनिजारे पाँच–पंच महाभूत (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी)।

   वैल पचीस–ये इस प्रकार हैं

   - आकाश–काम, क्रोध, लोभ, मोह, तम।
   - वायु–चलन, वलन, धवन, प्रसारण, संकोचन।
   - अग्नि–क्षुधा, तृषा, आलस्य, निद्रा, मैथुन।
   - जल–तार, रक्त, पसीना, मूत्र, वीर्य।
   - पृथ्वी–अस्थि, मांस, त्वचा, नाड़ी, रोम।

   नवबहियाँ–पंच प्राण तथा चार अन्तःकरण।

   दसगौनि–दस इन्द्रियाँ।

   कसनि बहत्तर–72 बंधन (16 कंडराएँ, 16 जाल, परज्जु, 7 सेवनी, 14 अस्थि संघात 14 सीमांत, 1 त्वचा)।

   सात सूत–सात धातुएँ (रक्त, रस, मज्जा, मांस, वसा, अस्थि, शुक्र)।

   तीनि जगाति–तीन कर्मचारी (सत, रज, तम)।
2. सरल, सहज व धाराप्रवाह सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है।
3. शब्द चयन भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण का प्रयोग है।
5. अनुप्रास, प्रश्न तथा रूपकातिशयोक्ति अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

6. पद छंद का प्रयोग है।
7. संबोधन शैली का प्रयोग हुआ है।

90. सब मदिमाते कोई न जाग, ताथे संग ही चोर घर मुसन लागे।।
पंडित माते पढ़ि पुरांन, जोगी माते धरि धियांन।।
संन्यासी माते अहंमेव, तपा जु माते तप के भेव ।।
जागे सुक ऊधव अंकूर, हणवंत जागे ले लंगूर।।
संकर जागे चरन सेव, कलि जागे नामां जेदेव ।।
एक अभिमान सब मन के काम, ए अभिमान नहीं रही ठाम।।
आतमां राम को मन विश्राम, कहि कबीर भजि राम नाम।। (387)

व्याख्या

कबीरदास कहते हैं कि सारे मतवाले हैं, कोई सजग नहीं है, इसलिए साथ के चोर घर को लूट रहे हैं।

पंडित पुराण को पढ़कर मस्त हैं। योगी ध्यान धरकर मतवाले हैं। अहं के कारण सन्यासी मत्त हैं। तपस्या के रहस्य में तपस्वी माते हैं। शकदेव, उद्धव और अक्रुर जाग्रत हैं। वानर हनुमान जाग्रत हैं। चरणों की सेवा करके शंकर जाग्रत हैं। कलियुग में नामदेव और जयदेव जाग्रत हैं। सारे अभिमान मन के काम हैं । इस अभिमान से कोई जगह नहीं मिल सकती है। कबीर कहते हैं कि राम नाम का भजन करो तभी परमात्मा के मन को विश्राम प्राप्त होगा।

विशेष

1. इस पद में बताया गया है कि संसार के सभी प्राणी अहंकार में डूबे हुए हैं। इस अहंकार से मुक्ति नहीं मिल सकती है। मुक्ति परमात्मा की भक्ति से मिलेगी।
2. सरल, सहज व धाराप्रवाह सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है।
3. शब्द चयन भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण का प्रयोग है।
5. अनुप्रास, श्लेष व उल्लेख अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग है।
7. संबोधन शैली का प्रयोग हुआ है।

91. आवध राम सवै करम करिहूँ, सहज समाधि न जम द्य डरिहूँ।। टेक।।
कुंभरा है करि वासन धरिहूं, धोबी है मल धोऊँ।
चमरा है करि बासन रंगों, अघौरी जाति पांति कुल खोऊँ।।
तेली है तन कोल्हूं करिहौ, पाप पुंनि दोऊ पेरूं।।

पंच बैल जब सूध चलाऊँ, राम जेवरिया जोरूं ।।
क्षत्री है करि खड़ग संभालूं, जोग जुगति दाउ सांधूं।।
नउवा है करि मन कू मूडूं, बाढ़ी है कर्म बाढूं ।।
अवधू है करि यह. तन धूतौ, बधिक है मन मारूं ।।
बनिजारा है जन कुँ बनिजूं, जूवारी है जम जारूं ।।
तन करि नवका मन करि खेवट, रसना करउँ वाड़ारूँ।।
कहि कवीर भवसागर तरिहूं आप तिरू बप तारूँ।। (389)

व्याख्या

हे प्रभु! मैं सारे कर्मों को करूँगा। सहज समाधि में रहूँगा और यमराज से नहीं डरूँगा।

कुम्हार होकर बर्तन निर्माण करूँगा, धोबी होकर मल धोऊँगा, चमार होकर बासन पर रंग चढ़ाऊँगा, अघोरी होकर जाति–पाँति और कुल को खो दूंगा।

तेली होकर शरीर को कोल्हू करूँगा और उसमें पाप–पुण्य को पेरूँगा। पाँच बैलों (पंचेन्द्रियाँ) को सीधा चलाऊँगा और रामनाम रूपी रस्सी से जोडूंगा।

क्षत्रिय होकर तलवार धारण करूँगा और योग–युक्ति की साधना करूँगा। नाई बनकर मन को मूडूंगा और बढई होकर कर्म को काटूंगा। अवधूत होकर इस शरीर को साफ करूँगा, बधिक होकर मन का वध करूँगा। . पारी बनकर मन का वाणिज्य करूँगा और जुआरी होकर यमराज को हराऊँगा या यम को हार जाऊँगा।

शरीर को नाव बनाऊँगा और मन को मल्लाह और जिह्वा को पतवार बनाऊँगा। कबीर कहते हैं कि भवसागर से तर जाऊँगा।

विशेष

1. कवि ने स्पष्ट किया है कि विषय–विकारों से दूर रहकर ही ईश्वर को प्राप्त किया जा सके।
2. सरल, सहज व धाराप्रवाह सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है।
3. शब्द चयन भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण का प्रयोग है।
5. अनुप्रास, रूपक, पदमैत्री व उल्लेख अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग है।
7. संबोधन शैली का प्रयोग हुआ है।

राग माली गौड़ी

92. पंडिता मन रंजिता, भगति हेत त्यौ लाइ लाइ रे।।
प्रेम प्रीति गोपाल भजि नर, और कारण जाइ रे।। टेक।।
दाँम छै पणि काम नाही, ग्यॉन छै पणि अंध रे।।

श्रवण छै पणि सुरत नाही, नैन छै पणि अंध रे।।
जाके नाभि पदम सूं उदित ब्रह्मा, चरन गंग तरंग रे।।
कहै कबीर हरि भगति बांछू जगत गुर गोव्यंद रे।। (390)

व्याख्या

कबीरदास कहते हैं कि मन को प्रसन्न करने वाले पंडित! भक्ति में ध्यान लगाओ। प्रेम–प्रीति से गोपाल को भजो! और कार्यों में जीवन नष्ट हो जायेगा। तुम्हारे पास धन है, पर तुम्हें उसके व्यवहार का तरीका पता नहीं है, ज्ञान है, पर उसके उपयोग की विधि ज्ञात नहीं है। कान है, पर सुनते नहीं हो, आँखें हैं, पर देखते नहीं हो, तो धन, ज्ञान, कान, आँख सब बेकार हैं।

कबीर कहते हैं कि जिसकी कमलनाभि से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई है, चरण से गंगा की तरंगें निकली हैं, ऐसे जगत् गुरु परमात्मा से मैं भक्ति की कामना करता हूँ।

विशेष

1. मनुष्य को अपना ध्यान भक्ति में लगाने का उपदेश दिया गया है।
2. सरल, सहज व धाराप्रवाह सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है।
3. शब्द चयन भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण का प्रयोग है।
5. अनुप्रास, पुनरुक्ति प्रकाश, पदमैत्री, रूपक व विशेषोक्ति अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग है।
7. संबोधन शैली का प्रयोग हुआ है।

राग–सारंग

93. यह ठग ठगत सकल जग डोले, गवन करै तब मुषह न बोल।।
तूं मेरो पुरिषा हौं तेरी नारी, तुम्ह चलते पाथर थें भारी।
बालपना के मीत हमारे, हमहिं लाडि कत चले हो निनारे।।
हम सूं प्रीति न करि री बौरी, तुमसे केते लागे ढौरी।।
हम काहू संगि गए न आये, तुम्ह से गढ़ हम बहुत बसाये।।
माटी की देही पवन सरीर, ता ठग सं जन डरै कबीरा।। (394)

व्याख्या

कबीरदास कहते हैं कि यह माया ठग है और सारे संसार को ठगती हुई घूमती है। गमन करते समय मुख से नहीं बोलती है।

वह कहती है कि तू मेरा पुरुष है और मैं तुम्हारी स्त्री हूँ। चलते समय तुम पत्थर से भी उपादन भारी (कठोर) हो गये। तुम मेरे बचपन के मित्र हो। हमें अलग करके कहाँ जा रहे हो?.

कबीर कहता है–हे बावली! हमसे प्रीति न करो। तुम्हारे जैसे कितने नष्ट हो गये। यह तो न किसी के सग गय है और न आये हैं। तुम्हारे समान हमने अनेक गढ़ बसाये हैं। मिट्टी का देह है, पवन का भी कबीर कहते हैं कि लोग उस ठग से डरते हैं।

विशेष

1. कवि द्वारा सत्य–तत्त्व को पहचानने का परामर्श दिया गया है।
2. सरल, सहज व धाराप्रवाह सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है।
3. शब्द चयन भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गण का प्रयोग है।
5. अनुप्रास, रूपक तथा व्यतिरेक अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग है।
7. संबोधन शैली का प्रयोग हुआ है।

राग मलार

94. जतन बिन मृगनि खत उजारे,
टारे टरत नहीं निस बासुरि, बिडरत नहीं बिडारे ।।टेक।।
अपने अपने रस के लोभी, करतब न्यारे न्यारे ।
अति अभिमान बदत नहीं काहू, बहुत लोग पचि हारे ।।
बुधि मेरी फिरषी गुर मेरौ बिझुका, आखिर दोइ रखवारे ।।
कहै कबीर अव खानन देहुं, बरियां भली संभारे।। (396)

व्याख्या

कबीरदास कहते हैं कि बिना यत्न के मृगों ने (पाशविक प्रवृत्तियों में पाँचेन्द्रियाँ) खेत (जीवन–क्षेत्र) को उजाड़ डाला। ये रात–दिन भगाने पर न तो भागते हैं और न ही हटाने पर हटते हैं। ये अपने–अपने रसों के लिए लोभी हैं। इनके कर्म अलग–अलग हैं। ये बड़े अहंकारी हैं। किसी को कुछ नहीं मानते हैं। बहुत लोग थककर हार गये हैं।

मेरी बद्धि कृषि है, योग गुरु बिझुका है, दो अक्षर मेरे रक्षक हैं। कबीर कहते हैं कि अब खेत (जीवन औलोको खाने नहीं दूंगा। बारी (वाटिका) को यानि समय को अच्छी तरह से सम्भाल रखा है।

विशेष

1. इन्द्रियों की प्रबलता का वर्णन किया गया है।
2. सरल, सहज व धाराप्रवाह सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है।
3. शब्द चयन भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण का प्रयोग है।
5. अनप्रास, रूपक तथा रूपकातिशयोक्ति अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

6. पद छंद का प्रयोग है।

7. संबोधन शैली का प्रयोग हुआ है।

राग धनाश्री

95. कहा नर गरबसि थोरी बात।
मन दस नाज टका दस गंठिया, टेढ़ी टेढ़ी जात।। टेक।।
कहा लै आयौ यहु धन कोऊ, कहा कोऊ लै जात।।।
दिवस चारि की है पतिसाही, ज्यूं बनि हरियल पात।।
राजा भयौ गांव सौ पाये, टका लाख दस ब्रात।।
रावन होत लंका को छत्रपति, पल मैं गई बिहात।।
माता पिता लोक सुत बनिता, अंत न चले संगात।।
कहै कबीर राम भजि बौरे, जनम अकारथ जात।। (400)

व्याख्या

कवीरदास जी कहते हैं कि हे प्राणी! थोड़ी बात के लिए क्यों अहंकार करता है? दस मन अनाज, दस टकों के कारण अर्थात् अल्प धन–वैभव के कारण तू क्यों टेढ़े–मेढ़े चलता है अर्थात् क्यों अहंकार करता है? क्या कोई व्यक्ति यह धन लेकर आया है और क्या लेकर जायेगा। जैसे वन के हरे पत्ते। चार दिन हरे रहते हैं, वैसे ही यह बादशाही (वैभव) चार दिनों की है कोई राजा हो गया। उसे सौ गाँव मिले। दस लाख टके की बारात मिल गयी। रावण लंका का राजा था, लेकिन पलभर में उसका वैभव चला गया। माता, पिता, लोग, पुत्र, स्त्री आदि अंत में साथ नहीं चलते हैं। कबीर कहते हैं कि हे बावले! राम का भजन करो। यह जन्म व्यर्थ में बीता जा रहा है।

विशेष

1. संसार की नश्वरता और व्यर्थता का प्रतिपादन किया गया है।
2. सरल, सहज व धाराप्रवाह सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है।
3. शब्द चयन भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण का प्रयोग है।
5. अनुप्रास, पुनरुक्ति प्रकाश व उदाहरण अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग है।
7. संबोधन शैली का प्रयोग हुआ है।

96. ऐसी आरती त्रिभुवन तारे, तेज पुंज तहां प्रांन उतारै ।। टेक।।
पाती पंच पुहुप करि पूजा, देव निरंजन और न दूजा।।
तन मन सीस समरपन कीन्हां, प्रकट जोति तहां आतम लीना।।
दीपक ग्यान सबद धुनि घंटा पर पुरिख तहां देव अनंता।।
परम प्रकाश सकल उजियारा, कहै कबीर मैं दास तुम्हारा।। (403)

व्याख्या

कबीर दास कहते हैं कि हे मनुष्य! ऐसी आरती करो जो तीन लोकों से तारने वाली हो। जहाँ तेज के पुंज परमात्मा हों, वहाँ प्राणों को उतारो। पाँच पत्ती (पाँच प्राण) तथा कमल (हृदय कमल) से अराधना करो। निरंजन के अतिरिक्त और कोई देवता नहीं है। तन, मन और सिर के समर्पण से वहाँ ज्योति प्रकट होती है और आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है। वहाँ पर ज्ञान ही दीपक, ध्वनि (शब्द) ही घंटा और परम पुरुष ही अनन्त देवता है। वह परमात्मा सवको प्रकाशित करने वाला परम प्रकाश रूप है। कबीर कहते हैं कि मैं ऐसे प्रकाश रूप परमात्मा का सेवक हूँ।

विशेष

1. इस पद में सामान्य आरती का नहीं, वरन् विशेष अर्थात् आध्यात्मिक आरती का वर्णन किया गया है।
2. सरल, सहज व धाराप्रवाह सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग हुआ है।
3. शब्द चयन भावाभिव्यक्ति में सहायक है।
4. प्रसाद गुण का प्रयोग है।
5. अनुप्रास, पदमैत्री तथा रूपक अलंकारों का प्रयोग हुआ है।
6. पद छंद का प्रयोग है।
7. संबोधन शैली का प्रयोग हुआ है।